Con. 3. VII. 23. 48
350

अंक 7
संख्या 23

बृहस्पतिवार,
9 दिसम्बर
सन् 1948 ई.

# भारतीय विधान-परिषद्

## के

# वाद-विवाद

## की

# सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

---

विषय-सूची

पृष्ठ

विधान का मसौदा-(जारी) 1519-1579
[नये अनुच्छेद 23-ए और अनुच्छेदों 25, 25-ए, 23 तथा 27 पर विचार]

# भारतीय विधान-परिषद्

बृहस्पतिवार, 9 दिसम्बर, सन् 1948 ई.

---

*भारतीय विधान परिषद् कान्स्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में 10 बजे प्रातः उपाध्यक्ष (डॉ. एच.सी. मुकर्जी) के सभापतित्व में समवेत् हुई।*

---

## विधान का मसौदा–(जारी)

### नया अनुच्छेद 23-ए

***उपाध्यक्षः** (डॉ. एच.सी. मुकर्जी): आज हम संशोधन संख्या 716 पर विचार से कार्यारम्भ करेंगे। यह प्रोफेसर के.टी. शाह के नाम में है।

***प्रोफेसर के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं :

"कि 'साम्पत्तिक अधिकार' शीर्षक के अन्तर्गत निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये :

'23-A. All forms of natural wealth, such as land, forests, mines and minerals, waters of rivers, lakes or seas surrounding the coasts of the Union shall belong to the people of India. No private property shall be allowed in any of these forms of the country's wealth; nor shall they be owned, worked, managed or developed except by public enterprise exclusively.' "

(23-ए. सब प्रकार की प्राकृतिक सम्पत्ति, जैसे कि भूमि, जंगल, खानों और खनिज और नदियों, झीलों अथवा संघ के तट के चारों ओर के समुद्रों के जल, भारत की जनता के स्वामित्व में होंगे। देश की इन सम्पत्तियों

---

*इस चिन्ह का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[प्रो के.टी. शाह]

पर किसी का निजी स्वामित्व नहीं होगा; तथा किसी के स्वमित्व में अथवा न किसी के द्वारा प्रबन्धित, संचालित अथवा विकसित होंगे।"

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। हमने अब तक साम्पत्तिक अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेद 24 पर विचार नहीं किया है, फिर सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण के विषय में अनुच्छेद 23-ए कैसे पेश हो सकता है? मैं सादर सुझाव रखना चाहता हूं कि, यदि आप प्रोफेसर के.टी. शाह को अनुच्छेद 23-ए पेश करने की अनुमति दें तो, अनुच्छेद 24 पर हमारे विचार कर चुकने के पश्चात् ही वह पेश किया जाना चाहिये।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्रीमान्, मैं बताना चाहता हूं...

(श्री बी. दास बोलने के लिये खड़े हुये।)

***उपाध्यक्ष:** प्रोफेसर शाह को जो कुछ कहना है मैं उसे सुनना चाहता हूं।

***प्रोफेसर के.टी. शाह:** श्री दास को कुछ गलत-फहमी है। इसमें सब वर्तमान निजी सम्पत्तियों के राष्ट्रीयकरण की बात नहीं कही गई है। मैं तो केवल एक सिद्धान्त का उल्लेख कर रहा हूं जिसे कानूनी भाषा में राज्य के सर्वोपरि स्वामित्व का अधिकार कहा जा सकता है। अतएव यह तो केवल इस बात की घोषणा है कि प्राकृतिक सम्पत्ति जनता की होती है, राज्य की होती है। इसका यह आशय नहीं है कि इस समय जो सम्पत्ति गैर-सरकारी कब्ज़े में है उसका राष्ट्रीयकरण होना है। न इससे इस बात की ही सम्भावना नष्ट हो जाती है कि वर्तमान मालिक अथवा भावी मालिक भूमि, वनों आदि पर राज्य के सर्वोपरि स्वामित्व के अधीन, उसके प्रतिनिधि के रूप में अधिकार रख सकेंगे। इसमें मुझे कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती।

***श्री बी. दास:** मेरे विचार में अनुच्छेद 24 में साम्पत्तिक अधिकार की चर्चा है, चाहे वह सम्पत्ति राज्य की हो अथवा किसी व्यक्ति की। इस संशोधन पर तभी वाद-विवाद हो सकता है, जबकि हम अनुच्छेद 24 का विचार करें, और प्रोफेसर शाह अपना संशोधन बाद में पेश कर सकते हैं।

***श्री आर. के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मेरा ख्याल है कि मेरे माननीय मित्र श्री बी. दास जो कुछ कह रहे हैं वह सर्वथा ठीक है। हम अनुच्छेद 23 पर विचार कर रहे हैं जो कि सांस्कृतिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी अधिकारों के विषय में है—और यदि यह अनुच्छेद पारित हो जाता है...

***उपाध्यक्ष:** माननीय सदस्य को उन बातों को दुहराने की आवश्यकता नहीं है जो श्री दास पहले ही कह चुके हैं।

***श्री आर. के. सिधवा:** श्रीमान्, मैं आपका ध्यान आकृष्ट करने के लिये ही इस पर ज़ोर दे रहा हूं।

***सैयद मोहम्मद सादुल्ला** (आसाम : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, क्या मैं आपका ध्यान प्रस्ताव की ही ओर आकृष्ट कर सकता हूं जो कि संशोधनों की सूचना के पृष्ठ 75 पर है? प्रोफेसर शाह का संशोधन इस प्रकार है–"कि 'साम्पत्तिक अधिकार' शीर्षक के अन्तर्गत निम्न नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये" और 'साम्पत्तिक अधिकार' अनुच्छेद 24 का शीर्षक है, 23 का नहीं।

***उपाध्यक्ष:** मैं व्यवस्था देता हूं कि प्रोफेसर शाह को अपना संशोधन 24-ए के अन्तर्गत रखने दिया जाये। जहां तक संशोधन संख्या 717 और 718 का सम्बन्ध है, वे निदेशक सिद्धान्तों के विषय में परिषद् के पूर्ववर्ती निर्णयों में आ जाते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): जो अधिकार न्याय्य नहीं हैं वे उनमें आ जाते हैं किन्तु मूलाधिकारों के विषय में जो अधिकार हैं वे उनमें ज़रा भी नहीं आते। उस समय यही तय हुआ था कि मूलाधिकारों के साथ इन पर विचार किया जायेगा।

***उपाध्यक्ष:** क्या आप यह कहते हैं कि यह दोनों संशोधन निदेशक सिद्धान्तों के भी अन्तर्गत आने चाहियें तथा यहां भी? यह सम्भव नहीं है। मैं इसे अनियमित ठहराता हूं।

---

## अनुच्छेद 24

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): परिषद् के बहुत से माननीय सदस्यों की इच्छा है कि इस अनुच्छेद पर अभी विचार नहीं किया जाना चाहिये,

[श्री टी.टी. कृष्णमाचारी]

वरन् बाद में किया जाना चाहिये, क्योंकि हम वास्तव में इसमें बहुत से संशोधनों पर विचार कर रहे हैं, जिससे कि मध्यवर्ती उपाय निकल आये, और इस विषय में डॉ. अम्बेडकर मेरी बात का समर्थन करेंगे।

*__माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर__ (बम्बई : जनरल): हां, श्रीमान्, मेरी प्रार्थना है कि अनुच्छेद संख्या 24 को स्थगित कर दिया जाये।

*__उपाध्यक्ष:__ क्या यही परिषद् की इच्छा है?

*__माननीय सदस्यगण:__ हां।

*__श्री ज़ैड. एच. लारी__ (संयुक्तप्रान्त : मुस्लिम): तो फिर, श्रीमान्, अनुच्छेद 15 के विषय में क्या स्थिति है?

*__उपाध्यक्ष:__ उस अनुच्छेद पर विचार अभी स्थगित रखा गया है।

(श्री कामत से) आप अनुच्छेद 24 के सैनिक शिक्षा-सम्बन्धी संशोधन के विषय में कुछ कहना चाहते हैं?

*__श्री एच.वी. कामत__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): ऐसे संशोधन भी हैं जो कि 'साम्पत्तिक अधिकार' के सम्बन्ध में नहीं है, और उन्हें अनुच्छेद 24 के पश्चात् रखने की सूचना दी गई है। उनके विषय में क्या होगा?

*__उपाध्यक्ष:__ उन पर अनुच्छेद 24 के पश्चात् विचार किया जायेगा।

---

## अनुच्छेद 25

*__काज़ी सैयद करीमुद्दीन__ (मध्यप्रान्त और बरार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में लिखा है कि "इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था को छोड़ कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार स्थगित न किये जायेंगे।" अब, मैं अपना संशोधन पेश करता हूं:

"कि जब तक प्रारूपित विधान के ग्यारहवें भाग पर विचार न हो, तब तक के लिये अनुच्छेद 25 पर विचार स्थगित कर दिया जाये।"

अनुच्छेद 280 में लिखा है कि:

"जहां सद्यस्कृत्यस्थिति की उद्घोषणा प्रवर्तन में हैं, वहां प्रधान, आदेश द्वारा घोषणा कर सकेगा कि इस संविधान के अनुच्छेद 25 के द्वारा प्रत्याभूत अधिकार ऐसे आदेश में उल्लिखित ऐसी अवधि के लिये निलम्बित रहेंगे, जो उस उद्घोषणा के प्रवतनशून्य होने के पश्चात् छः मास की अवधि से परे विस्तृत न हो सकेगी।"

यदि आज अनुच्छेद 25 पारित हो जाता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि हम अनुच्छेद 280 के प्रावधानों को मानते हैं, क्योंकि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में उल्लिखित है कि "इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था को छोड़ कर इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत-अधिकार स्थगित न किये जायेंगे।" हमें अनुच्छेद 280 के पारित होने पर अत्यन्त गम्भीर आपत्ति है। अनुच्छेद 275 से 280 में जो सद्यस्कृत्यस्थिति-सम्बन्धी प्रावधान हैं वे असाधारण हैं तथा उनमें से कोई तो संघ-व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों के ही विपरीत हैं तथा संसार के किसी संविधान में इनका कोई उदाहरण नहीं है और 275 से 280वें अनुच्छेदों पर अनेक संशोधन हैं। अतएव इस अनुच्छेद को मानने का अर्थ 275 से 280वें अनुच्छेदों को मानना हो गया। इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद में कहा गया है कि "इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था को छोड़ कर"। जब तक 275 से 280वें अनुच्छेदों पर विचार न हो जाये, इस अनुच्छेद पर विचार किया ही नहीं जा सकता। अतएव मेरा निवेदन है कि जब तक 275 से 280वें अनुच्छेद पारित न हो जायें, तब तक हम अनुच्छेद 25 पर विचार करने के लिये अक्षम हैं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मेरे विचार में वह बात नहीं है कि चूंकि यह अनुच्छेद दूसरे अनुच्छेदों के प्रावधानों के अधीन है, जिनकी कि मेरे माननीय मित्र मि. करीमुद्दीन ने चर्चा की है, इस कारण हमारे लिये इस अनुच्छेद पर अभी विचार करना सम्भव नहीं है, क्योंकि आप देखेंगे कि यदि हम यह मान लें कि हम अनुच्छेद 285 में अथवा इससे सम्बन्धित अन्य अनुच्छेदों में परिवर्तन कर ही देते हैं तो हम अनुच्छेद 25 में भी तदनुसार परिवर्तन कर सकते हैं। इससे कोई रुकावट नहीं आयेगी। अतएव हमारे लिये इसी समय अनुच्छेद 25 पर विचार करना नितांत सम्भव है और बाद में इसमें कोई परिवर्तन करने में इससे कोई बाधा नहीं होगी। मान लीजिये बाद के अनुच्छेदों में कोई परिवर्तन किये जायें।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीन:** तो फिर इसे स्थगित ही क्यों न कर दिया जाये?

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** नहीं।

***उपाध्यक्ष:** मैं इस संशोधन पर मत लेता हूं, क्योंकि यदि यह पारित हो जाता है तो सारे संशोधन पर विचार स्थगित हो जायेगा।

**उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि जब तक प्रारूपित विधान के ग्यारहवें भाग पर विचार न हो, तब तक के लिये अनुच्छेद 25 पर विचार स्थगित कर दिया जाये।"

*प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 782 की अनुमति नहीं दी जाती। अब आता है संशोधन नं. 783 जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, एक औचित्य प्रश्न है। यह संशोधन अस्पष्ट है। इसका कुछ विशेष अर्थ नहीं निकलता।

***उपाध्यक्ष:** मि. नज़ीरुद्दीन अहमद को जो कुछ कहना है, वह हम सुन लें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (1) के स्थान पर निम्न खण्ड रखा जाये:

'(1) Every person shall have the right by appropriate proceedings to enforce the rights conferred by this Part."

[(1) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि वह उचित कार्यवाही द्वारा इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को क्रियान्वित कराये।]"

श्रीमान्, श्री सन्तानम्, का कहना है कि मेरा संशोधन अस्पष्ट है। मेरा निवेदन है कि यह अस्पष्ट नहीं है।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** उचित कार्यवाही क्या की जायेगी? न्याय-सम्बन्धी, प्रशासन-सम्बन्धी अथवा अधिशासी?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** न्यायालय में कार्यवाही।

***माननीय श्री के. सन्तानम्:** 'न्यायालय' कहां है?

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): संशोधन में न कार्य-प्रणाली की ही चर्चा है और न अदालत की।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** शायद कुछ मुद्रण की त्रुटि हो, मैं नहीं कह सकता। यदि मुद्रण की कोई त्रुटि नहीं है, तो इस पर नि:संदेह यह आलोचना की जा सकती है कि यह अस्पष्ट है। मेरे दिमाग में तो केवल यही बात थी कि उचित कार्यवाही द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में जाने के अधिकार की प्रत्याभूति होनी चाहिये। मैं चाहता था कि लोग अन्य न्यायालयों में भी जा सकें। यदि यहां मूलाधिकार स्वीकार किया जाता है और यदि गरीब आदमी को सर्वोच्च न्यायालय में जाने के लिये बाध्य किया जाता है...

***माननीय डॉ. बी.आर अम्बेडकर:** उपखण्ड (3) को तो देखिये।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** उस उपखण्ड द्वारा कुछ अन्य निर्देशित न्यायालयों को इस विषय का निर्णय करने का अधिकार दिया गया है; किन्तु मैं इसे और भी अधिक व्यापक बनाना चाहता था, कि किसी भी न्यायालय में दावा करके मूलाधिकारों पर अमल कराया जा सके। वास्तव में लोगों के लिये सब न्यायालय खुले होने चाहियें। यदि किसी मूलाधिकार को भंग किया जाये तथा जिसके अधिकार को भंग किया जाये वह निर्धन है, तो उसे सर्वोच्च न्यायालय भेजना अथवा किसी ऐसे न्यायालय को भेजना जो इस विषय में उचितरूपेण अधिकार-सम्पन्न हो, अनुचित होगा, क्योंकि वह भी कोई बड़ा न्यायालय ही होगा। मैं चाहता हूं कि सब न्यायालयों को मूलाधिकारों अथवा उनको तोड़ने के विषय में निर्णय करने का अधिकार होना चाहिये, और यह अधिकार सब न्यायालयों को मिलना चाहिये—चाहे वे आपराधिक हों अथवा व्यावहारिक। यदि किसी आपराधिक अथवा व्यावहारिक न्यायालय में किसी छोटे मुकद्दमें में सांविधानिक अधिकार का कोई कठिन प्रश्न उठ खड़ा हो तो उस न्यायालय को अधिकार होना चाहिये कि उस पर तत्काल निर्णय कर दे। इसके स्थान में इस खण्ड (1) के द्वारा लोगों को सर्वोच्च न्यायालय अथवा इस विषय में उचितरूपेण अधिकार-सम्पन्न अन्य किसी चुने हुये न्यायालय में जाकर दावा करना होगा।

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

मैं पूरी तरह मानता हूं कि इस संशोधन की भाषा पर निस्संदेह यह आलोचना हो सकती है कि यह कुछ-कुछ अस्पष्ट है; किन्तु मैं तो सिद्धान्त का सुझाव रख रहा हूं। यदि सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाये, तो तदनुसार संशोधन में परिवर्तन किया जा सकता। है। यह बात मेरे दिमाग में है; शायद जल्दी में मैं गलती कर गया; 'किसी न्यायालय में उचित कार्यवाही द्वारा' ऐसा होना चाहिये। वास्तव में संशोधन के असली शब्दों का अधिक महत्त्व नहीं है।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है। यह संख्या 43 का है और श्री वी.एस. सरवटे के नाम पर है।

***श्री वी. एस. सरवटे** (संयुक्त राज्य ग्वालियर-इंदौर-मालवा मध्यभारत): श्रीमान्, जब डॉक्टर अम्बेडकर अपना संशोधन रख चुकेंगे तब मैं अपना संशोधन पेश करूंगा।

***उपाध्यक्षः** आपका संशोधन तो संशोधन नं. 783 के सम्बन्ध में है?

**श्री वी.एस. सरवटेः** और विकल्प में संशोधन नं. 794 पर भी है।

**उपाध्यक्षः** जब हम संशोधन संख्या 794 पर आ जायें तब आप इसे पेश करना चाहते हैं। क्या आपकी यही इच्छा है?

***श्री वी.एस. सरवटेः** हां, श्रीमान्।

(संशोधन संख्या 784 पेश नहीं किया गया।)

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (1) में 'सर्वोच्च न्यायालय' इन शब्दों के स्थान पर 'सर्वोच्च न्यायालय अथवा अन्य न्यायालय जिसे खण्ड (3) के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों के प्रयोग का अधिकार दिया गया हो' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, हमने पहले ही खण्ड (3) में सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों को इन अधिकारों के प्रयोग का प्राधिकार प्रावहित करने का प्रयत्न किया है। यह खण्ड (3) के फलस्वरूप ही है।

(संशोधन सं. 786 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 787, 788 और 793 का एक-सा ही आशय है और उन पर एक साथ विचार किया जायेगा। संशोधन संख्या 788 सर्वाधिक व्यापक दिखाई देता है।

(संशोधन संख्या 788 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** तत्पश्चात् हम संशोधन संख्या 787 को ले सकते हैं जो श्री कामत के नाम पर है।

***श्री एच. वी. कामतः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 787 को उस रूप में पेश करता हूं जिस रूप में कि वह चौथी सूची (तीसरे सप्ताह) के संशोधन संख्या 64 द्वारा संशोधित हुआ है। मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (2) के स्थान पर, निम्न नया खण्ड रख दिया जाये:

'(2) The Supreme Court shall have power to issue such directions or orders for writs as it may consider necessary or appropriate for the enforcement of any of the rights conferred by this part.' "

[(2) सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे निदेश अथवा आदेश अथवा लेख निकालने की शक्ति होगी जो कि वह इस भाग में प्रदत्त अधिकारों में से किसी की पूर्ति कराने के लिये आवश्यक अथवा उचित समझे।]

आरम्भ में ही मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं केवल एक साधारण ज्ञान का मनुष्य हूं और कोई पेशेवर वकील अथवा कानूनी या सांविधानिक विशेषज्ञ नहीं हूं जैसे कि मेरे मित्र डॉ. अम्बेडकर है; किन्तु मैं थोड़ा-सा कानून जानता हूं यद्यपि बहुत अधिक नहीं जानता, और मुझे कानून का जो थोड़ा-सा ज्ञान है उसी के आधार पर मैं कुछ कहूंगा। अनुच्छेद 25 के इस खण्ड का सम्बन्ध इस बात से है कि सर्वोच्च न्यायालय को भाग 3 में उल्लिखित मूलाधिकारों की पूर्ति कराने के लिये आदेश निकालने का अधिकार है। मेरे विचार में जहां तक सर्वोच्च न्यायालय का सम्बन्ध है यह निश्चित करना आवश्यक नहीं है कि उसे क्या-क्या लेख विशेष निकालने चाहियें। श्रीमान्, अन्ततः यह हो सकता है कि

[श्री एच.वी. कामत]

कानूनी तथा सांविधानिक उपक्रम के विकास के फलस्वरूप अन्य प्रकार के लेख चालू हो जायें जिनका कि इसमें उल्लेख नहीं किया गया है, और जब भी एक खास मुकद्दमा सर्वोच्च न्यायालय के सामने आये, तब यह हो सकता है कि न्यायालय उसके सब पहलुओं पर विचार करके कोई लेख निकाले, जो इनमें से कोई हो अन्यथा नया बनाया गया है। मेरे विचार में यह 'प्रसंग से कानून बनाने का, अत्यन्त दु:खद उदाहरण है। जब हम सर्वोच्च न्यायालय के विषय में व्यवस्था कर रहे हैं जिसमें कि प्रख्यात न्यायाधीश तथा विधान-वेत्ता होंगे, तब यह उल्लेख करना बुद्धिमानी अथवा वांछनीय नहीं होगा कि सर्वोच्च न्यायालय को किसी मामले में कौन-से लेख निकालने चाहियें। अतएव सब बातों पर विचार करने के पश्चात्, मेरा ख्याल है कि जहां तक संविधान का सम्बन्ध है, हमें केवल इतना ही कहना चाहिये कि सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे आदेश, निदेश अथवा लेख निकालने चाहिये जैसे कि न्यायालय किसी विशेष मामले में आवश्यक अथवा उचित समझे। अतएव, श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि खण्ड (2) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिया जाये:

'सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे निदेश अथवा आदेश अथवा लेख निकालने की शक्ति होगी जो कि वह इस भाग में प्रदत्त अधिकारों में से किसी की पूर्ति कराने के लिये आवश्यक अथवा उचित समझे।' "

मुझे आशा है कि डॉक्टर अम्बेडकर मुझे बतायेंगे कि वे यहां इन विशेष लेखों का उल्लेख करना क्यों आवश्यक समझते हैं, वे यह बात सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयार्थ ही क्यों नहीं छोड़ देना चाहते कि इसे किसी मुकद्दमें विशेष में कौन-से आदेश, निदेश अथवा लेख निकालने चाहियें। मुझे आशा है कि वह केवल प्रतिष्ठा अथवा ऐसे किसी विचार पर ही नहीं अड़े रहेंगे, बल्कि कोई संतोषजनक तथा वैध कारण बतायेंगे कि हमें इस अनुच्छेद के इस खण्ड में इन लेखों के उल्लेख करने पर क्यों अड़ना चाहिये।

(संशोधन संख्या 788 पेश नहीं किया गया।)

*__उपाध्यक्ष:__ संख्या 789 तथा 790 सदृश हैं। मैं 790 के पेश करने की अनुमति देता हूं।

(संशोधन संख्या 790 पेश नहीं किया गया।)

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर:** श्रीमान्, मैं समझता हूं कि मि. एम.ए. बेग सभा में नहीं हैं। क्या आप मुझे 789 के पेश करने की अनुमति देंगे। मैं इस संशोधन को स्वीकार कर लूंगा। इसे नियमित रूप से पेश करना होगा।

***मि. नज़ीरुद्दीन अहमद:** यदि परिषद् को स्वीकार्य हो तो मैं इस संशोधन को पेश करना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** क्या परिषद् मि. नज़ीरुद्दीन अहमद को इसे पेश करने की अनुमति देती है?

***माननीय सदस्यगण:** हां।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (2) में अंग्रेजी के 'in the nature of the writs of' इन शब्दों के स्थान पर 'or writs, including writs in the nature of' ये शब्द रख दिये जायें।"†

श्रीमान्, इस परिषद् में मेरे जीवन का यह एक महत्त्वपूर्ण दिवस है कि यह एक ही संशोधन है जोकि स्वीकृत होने वाला है। यह संशोधन मेरा सौतेला पुत्र है और शायद इसीलिये माननीय सदस्य इसे स्वीकार करने जा रहे हैं। इस पर व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

***श्री एच.वी. कामत:** एक औचित्य प्रश्न है। क्या संशोधन के पेश होते ही मेरे मित्र के लिये यह कहना ठीक है कि यह स्वीकृत होने जा रहा है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैंने अफवाह सुनी है कि यह स्वीकृत होने जा रहा है।

---

†(हिन्दी में उपर्युक्त संशोधन के पश्चात् खंड इस प्रकार बन जायेगा:

"सर्वोच्च न्यायालय को इस भाग में प्रदत्त अधिकारों में से किसी की भी पूर्ति कराने के लिए निदेश अथवा आदेश अथवा लेख, जिनमें वन्द्युपस्थापन, परमादेश, प्रतिबंध, अधिकार पृच्छालेख, उत्प्रेषण लेख के प्रकार के लेख भी सम्मिलित हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।")

***उपाध्यक्षः** संख्या 791 तथा 792 की अनुमति नहीं दी जाती, क्योंकि वे शाब्दिक संशोधन हैं

(संशोधन संख्या 793 पेश नहीं किया गया।)

***उपाध्यक्षः** संख्या 794, 795 तथा 799 सदृश हैं तथा उन पर साथ ही विचार होगा। 794 के पेश करने की अनुमति दी जाती है।

***माननीय डॉक्टर बी. आर. अम्बेडकरः** आपकी अनुमति से मैं कुछ शब्दों में जोकि गलती से मसौदे में आ गये हैं, एक-दो सुधार करूंगा। मेरा संशोधन है:-

"कि अनुच्छेद 25 के वर्तमान उपखण्ड (3) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिया जाये :

श्रीमान्, उन सुधारों के पश्चात् मेरा संशोधन इस प्रकार बन जायेगा:

'Without prejudice to the powers conferred on the Supreme Court by clauses (1) and (2) of this article, Parliament may by law empower any other Court to exercise within the local limits of its jurisdiction all or any of the powers exercisable by the Supreme Court under clause (2) of this article.' "

[इस अनुच्छेद के खण्ड (1) तथा (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के, संसद् विधि द्वारा, किसी दूसरे न्यायालय को उसके अधिकार-क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के अधीन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य सब अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी।] "

खण्ड (1) तथा (2) की चर्चा करने का कारण यह है कि उनका सम्बन्ध सर्वोच्च न्यायालय से है।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर दो संशोधन हैं। एक संख्या 44 है और दूसरा प्रथम सूची (तीसरा सप्ताह) का 45वां है और श्री सरवटे का संशोधन संख्या 43 है। श्री सरवटे!

**श्री वी.एस. सरवटेः** श्रीमान्, मैं जो संशोधन रख रहा हूं वह इस प्रकार है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 794 के अन्त में, निम्न शब्द जोड़ दिये जायें:

'*Explanation.*—The Supreme Court, in deciding matters arising out of this article, shall have the power to go into questions of fact.'

(व्याख्या—इस अनुच्छेद से उत्पन्न होने वाले मामलों का निर्णय करने में सर्वोच्च न्यायालय को तथ्य-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने की शक्ति होगी।)

श्रीमान्, हमने मूलाधिकारों के इस अध्याय में जो योजना स्वीकार की है उसमें सर्वप्रथम तो यह बात है कि अधिकारों की मूल बातें रख दी गई हैं, तत्पश्चात् अनुवर्त्ती खण्डों में विधान-मण्डलों को कुछ विशेष अवस्थाओं में, जो कि उन खण्डों में उल्लिखित हैं, उन अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार दिया गया है। वर्तमान अनुच्छेद में आरक्षण रखा गया है जिससे कि विधान-मण्डल अपनी शक्तियों से बाहर न चला जाये तथा स्थिति की आवश्यकता से अधिक कानून न बना दे। अब यह तर्क करना सम्भव है कि न्यायालय केवल यही देख सकता है कि विधान-मण्डल ने उस विषय में कोई अधिनियम पारित किया है या नहीं, और बारीकियों पर विचार नहीं कर सकता। अथवा यह तर्क किया जा सकता है कि न्यायालय को बारीकियों पर विचार करने की शक्ति नहीं है तथा इस प्रश्न पर निर्णय करने की शक्ति नहीं है कि किसी विशेष मामले को ध्यान में रखते हुये, उन कानून विशेष का बनाना अपेक्षित अथवा आवश्यक अथवा न्यायोचित था या नहीं। ऐसी विशेष अवस्था के लिये प्रावधान करना आवश्यक है क्योंकि अनुच्छेद 13 द्वारा विधान-मण्डल को 'किसी विधि' के बनाने की शक्ति दे दी गई है। ये शब्द उन शब्दों से अधिक विस्तृत हैं, यदि यह कहा जाता कि विधान-मण्डल के अमुक-अमुक मामलों में दण्ड-व्यवस्था करने की शक्ति है। यहां 'किसी विधि' इन शब्दों का प्रयोग किया गया है जो दण्ड की व्यवस्था करने की शक्ति प्रदान करने से अधिक विस्तृत शब्दावली है। अत: प्रत्येक मामले में न्यायालय के लिये यह देखना आवश्यक है कि कोई विशेष कानून स्थिति की आवश्यकताओं के ठीक अनुसार है या नहीं, वह आवश्यकता से अधिक तो नहीं है। विधान-मण्डल भयभीत होकर ऐसा कानून बना सकता है जबकि उस कानून

[श्री वी.एस. सरवटे]

की आवश्यकता ही न हो। अतएव मैंने यह व्याख्या रखी है। व्याख्या की भाषा से ही पता लग जायेगा, कि इसके द्वारा मूल खण्ड में कुछ घटाया-बढ़ाया नहीं गया है, किन्तु कुछ व्याख्या कर दी गई है। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि खण्ड के वर्तमान रूप में ही यह आशय सन्निहित है। किन्तु जैसा कि मैं आरम्भ में ही कह चुका हूं, इस विषय में कुछ सन्देह हो सकता है और ऐसे संदेहों को दूर करने के लिये और इसे अधिक सुनिश्चित करने तथा संशय के क्षेत्र से अधिक बाहर निकालने के लिये, मैंने यह व्याख्या जोड़ देने का प्रयत्न किया है। मैं इसे परिषद् तथा प्रस्तावक द्वारा स्वीकृति के लिये पेश करता हूं।

***उपाध्यक्षः** तत्पश्चात् संशोधन संख्या 44 तथा संख्या 45 आते हैं जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं संख्या 45 को पेश नहीं करना चाहता, क्योंकि इस पर कुछ आपत्ति हो सकती है। मैं केवल संख्या 44 पेश करूंगा।

श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 794 में, अनुच्छेद 25 के प्रस्तावित खण्ड (3) में से 'इस अनुच्छेद के खण्ड (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के' ये शब्द निकाल दिये जायें।"

श्रीमान्, मूल खण्ड में किसी दूसरे न्यायालय को ऐसी शक्तियां प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है, जो कि खण्ड (1) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के पास हैं। जैसा कि हम इस खण्ड में पहले ही कह चुके हैं, संसद् विधि द्वारा किसी अन्य न्यायालय को शक्ति प्रदान कर सकती है। 'किसी दूसरे न्यायालय को' इन शब्दों से ही पता चलता है कि यह दूसरे न्यायालय को प्रदत्त शक्ति पूरक शक्ति है, और इससे सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा। सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों की तो बहुत सुनिश्चित परिभाषा की गई है कि वह अन्य समस्त न्यायालयों पर सर्वथा सर्वोच्च है। अतः 'सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के' ये शब्द अनावश्यक हैं। वास्तव में संशय की कोई सम्भावना ही नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति सर्वोपरि है। इन परिस्थितियों में ये शब्द मुझे अनावश्यक प्रतीत होते हैं,

अतः उन्हें हटा देना चाहिये। वास्तव में, इस विषय में सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियां बहुत सुनिश्चित हैं। 'सर्वोच्च न्यायालय' इस शब्द से ही प्रतीत होता है कि यह सब विषयों में सर्वोच्च है। यदि हम इन शब्दों को रखते हैं तो इसका आशय यह हो जाता है कि सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार सर्वोच्च नहीं हैं। इससे वास्तव में कुछ सन्देह हो जाता है कि शायद सर्वोच्च न्यायालय कानूनी मामलों में सर्वोच्च नहीं हैं। यही कारण है कि मैं इन शब्दों को निकाल देने के लिये कह रहा हूं।

(संशोधन संख्या 795 तथा 799 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 796 के पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती, क्योंकि यह केवल रूप-सम्बन्धी संशोधन है।

(संशोधन संख्या 797, 798, 800 पेश नहीं किये गये।)

संशोधन संख्या 801 जो कि श्री कामत तथा मि. तजम्मुल हुसैन दोनों के संयुक्त नामों से है।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं मि. तजम्मुल हुसैन को इसको प्रस्तावित करने के लिये अपना अधिकार छोड़ देता हूं।

***श्री तजम्मुल हुसैन** (बिहार : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) को हटा दिया जाये।"

श्रीमान्, अनुच्छेद 9 के अधीन धर्म, जाति आदि के आधार पर राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध विभेद नहीं करेगा। इसका अर्थ यह है कि नागरिक को किसी दुकान, भोजनालय, होटल आदि में प्रवेश करने की अनुमति है। उसे कुओं, तालाबों, सड़कों और अन्य चीज़ों के प्रयोग करने की अनुमति है। अनुच्छेद 13 के अन्तर्गत नागरिक को, जैसे वह चाहे, अपना व्यवसाय करने तथा व्यापार करने की अनुमति है। अनुच्छेद 25 के अन्तर्गत, नागरिक अपने उपरोक्त अधिकारों को पूरा कराने के उद्देश्य से सर्वोच्च न्यायालय में जा सकता है, और सर्वोच्च न्यायालय वन्द्युपस्थापन, परमादेश आदि लेख निकाल सकता है। किन्तु, श्रीमान्, अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में उपरोक्त अधिकारों के स्थगन की चर्चा है। अनुच्छेद 280 में लिखा है कि जब सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा प्रवर्तन में हो, तब नागरिकों के प्रत्याभूत मूलाधिकारों को प्रधान निलम्बित कर सकता है। मेरा निवेदन

[श्री तजम्मुल हुसैन]

है कि इसकी अनुमति नहीं होनी चाहिये। यदि प्रधान को विधान में ऐसा अधिकार दिया जायेगा तो अनुच्छेद 9 में उल्लिखित समता के अधिकार का उस समय के लिये अस्तित्व नहीं रहेगा, और नागरिकों को कुओं, तालाबों तथा सड़कों आदि का प्रयोग नहीं करने दिया जायेगा। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को भी निलम्बित करना होगा, अपने व्यवसाय के करने का अधिकार भी जाता रहेगा, अनुच्छेद 15 के अधीन प्रत्याभूत जीवन की सुरक्षा भी नहीं रहेगी, विश्वास-स्वातन्त्र्य भी नहीं रहेगा, सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार भी नहीं रहेगा। मेरे विचार में प्रधान को यह सब अधिकार देना अत्यन्त भयावह है। आखिर हम क्या हैं? हम जनता के प्रतिनिधि ही तो हैं—हम जनता हैं। जब हम विधान बना चुकेंगे तो हम चले जायेंगे और अन्य लोग आ जायेंगे। वे भी जनता के प्रतिनिधि होंगे। वे भी वही होंगे जो हम हैं—हममें कोई अन्तर नहीं हो सकता। क्या हमें उन लोगों पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार है? क्या हम उनसे यह कह सकते हैं कि 'आप यह काम नहीं करेंगे, आप वह काम करेंगे'? यह स्वतंत्र देश है। यदि लोग क्रान्ति चाहते हैं तो उन्हें क्रान्ति करने दीजिये। हमें क्या अधिकार है कि उसे रोकें? अतः मैं कहता हूं कि किसी व्यक्ति को—चाहे वह कितना ही बड़ा हो,—गणतन्त्र के प्रधान को अथवा किसी और को ऐसी शक्ति नहीं दी जानी चाहिये कि वह इस विधान द्वारा प्रत्याभूत किसी मूलाधिकार को निलम्बित कर सके। इन शब्दों के साथ मैं यह संशोधन परिषद् में सविनय पेश करता हूं।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** उपाध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में 'इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था' इन शब्दों के स्थान पर 'विद्रोह अथवा आक्रमण की अवस्था तथा जब इस संविधान के भाग 9 के अधीन सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित की जाये उस अवस्था' ये शब्द रख दिये जायें।"

श्रीमान्, मैं मि. तजम्मुल हुसैन द्वारा प्रस्तावित संशोधन से सहमत नहीं हो सकता, जिसमें कहा गया है कि खण्ड (4) को हटा देना चाहिये। देश में ऐसे अवसर आते हैं जब कि आक्रमण हो गया हो अथवा आन्तरिक विद्रोह हो जाये, पर कोई प्रधान इतना मूर्ख नहीं होगा कि ऐसे कार्यों पर प्रतिबन्ध लगाये, जैसे कि मनुष्य-मनुष्य में विभेद का अथवा अस्पृश्यता का प्रश्न है, जिनका कि आक्रमण अथवा विद्रोह से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव देश में शान्ति और व्यवस्था बनाये

रखने के लिये 13वें और 25वें अनुच्छेदों के कुछ प्रावधानों को निलम्बित करना अपेक्षित होगा, किन्तु यह कहना कि ज्यों ही आक्रमण अथवा युद्ध होगा, त्यों ही 13वें तथा 25वें अनुच्छेदों के अन्तर्गत प्रत्येक खण्ड तथा उपखण्ड को स्थगित कर दिया जायेगा, मेरे विचार में ऐसी बात है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। मेरे संशोधन में लिखा है कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों को तभी स्थगित किया जायेगा जब कि आक्रमण हो, क्योंकि 275 से 280वें अनुच्छेदों में कहा गया है कि जब युद्ध की तात्कालिक आशंका हो तब भी, 13वें और 25वें अनुच्छेदों को स्थगित किया जा सकता है, केवल सद्यस्कृत्यस्थिति के समय के लिये ही नहीं, अपितु उस समय के पश्चात् भी छः मास तक। अनुच्छेद 280 में कहा गया है कि "जहां सद्यस्कृत्यस्थिति की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो, वहां प्रधान आदेश द्वारा घोषणा कर सकेगा कि इस संविधान के अनुच्छेद 25 के द्वारा प्रत्याभूत अधिकार, ऐसे आदेश में उल्लिखित ऐसी अवधि के लिये निलम्बित रहेंगे, जो उस उद्घोषणा के प्रवर्तनशून्य होने के पश्चात् छः मास की अवधि से परे विस्तृत न हो सकेगी।" मैं सच्चे हृदय से यह युक्ति पेश कर रहा था कि अनुच्छेद 25 के प्रावधानों को स्थगित रखा जाये तथा 275 से 280 तक के अनुच्छेद के प्रावधानों को पारित करने के पश्चात् उन पर विचार किया जाये। अब हम अनुच्छेदों 25 तथा 13 के प्रावधानों को निलम्बित करने के प्रश्न पर विचार कर रहे हैं जबकि हम यह नहीं जानते कि 275 से 280वें अनुच्छेदों के प्रावधानों के अन्तर्गत क्या स्थिति उत्पन्न होगी। इन अधिकारों को उन प्रावधानों के आधार पर स्थगित किया जायेगा, जिन्हें अभी बनाना है और जिन्हें परिषद् ने अभी तक स्वीकार नहीं किया है। मेरा ख्याल था कि डॉक्टर अम्बेडकर इस सुझाव का विरोध करेंगे। किन्तु मैं परिषद् के निर्णय को शिरोधार्य करता हूं। अब हमारे सामने यह स्थिति है कि हम उन विचारों और प्रावधानों के हेतु खण्ड (4) को स्वीकार करने जा रहे हैं जो अभी तक पारित नहीं हुये हैं, और शायद परिषद् उन्हें रद्द कर दे। इसके उत्तर में कहा गया है कि आवश्यक परिवर्तन कर दिये जायेंगे। अस्तु, मैंने आवश्यक परिवर्तन कर दिये हैं और अब यह परिषद् का काम है कि उन्हें स्वीकार करे अथवा ठुकरा दे। और वे ये हैं कि विद्रोह अथवा आक्रमण की अवस्था तथा जब इस संविधान के भाग 9 के अधीन—अर्थात् 275 से 280वें अनुच्छेदों के अधीन—सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा की जाये उस अवस्था में इन अधिकारों को निलम्बित किया जा सकता है। मेरा निवेदन है कि जब तक सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा न हो और जब तक वास्तव में आक्रमण अथवा

[काजी सैयद करीमुद्दीन]

आंतरिक विद्रोह न हो तब तक 13 से 25वें अनुच्छेदों के अधीन प्रदत्त अधिकारों को निलम्बित नहीं करना चाहिये। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि प्रान्त में ऐसे दल को शक्ति प्राप्त हो जाती है जोकि केन्द्र से सत्तारूढ़ दल के विरुद्ध है। प्रधान तत्काल यह सोच कर कि प्रान्त में आन्तरिक गड़बड़ है, सद्यस्कृत्यस्थिति के नियम के अनुसार विधान के उस भाग को निलम्बित कर सकता है। परिणाम यह होगा कि अनुच्छेद 13 के अधीन नागरिकों के सब अधिकार निलम्बित हो जायेंगे। अतएव मैंने अपने संशोधन में यह दो शर्तें रखी हैं कि आक्रमण तथा विद्रोह की अवस्थाओं में यह अधिकार निलम्बित किये जाने चाहियें। मैं ऐसा नहीं कहता कि इन अधिकारों को कभी स्थगित करना ही नहीं चाहिये, यद्यपि इंग्लिस्तान एवं अमरीका में ऐसे अधिकारों को निलम्बित करने का ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। किन्तु हमारा देश परिवर्तन तथा संकट के काल से गुज़र रहा है; और यदि ऐसे समय में इन अधिकारों को स्थगित नहीं किया जायेगा तो देश में बड़ी उथल-पुथल मच जायेगी। अतएव मैं अनुरोध करता हूं कि मैंने जो संशोधन पेश किया है वह स्वीकृत किया जाये।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 803 शाब्दिक संशोधन है और उसकी अनुमति नहीं दी जाती।

(संशोधन संख्या 804 पेश नहीं किया गया।)

**श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** मैं संशोधन संख्या 805 पेश करूंगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** यह भी शाब्दिक संशोधन है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में 'प्रत्याभूत' (guaranteed) शब्द के स्थान पर 'प्रदत्त' (conferred) शब्द रख दिया जाये।"

श्री अनन्तशयनम् आयंगर ने कहा है कि यह एक शाब्दिक संशोधन है, अतः मैं अभी बतलाता हूं कि मैंने इसे किस कारण से पेश किया है। मैं मानता हूं कि यह लगभग शाब्दिक संशोधन ही है। किन्तु मेरे इसे पेश करने का केवल यही कारण है कि स्वयं श्री अम्बेडकर के नाम पर संशोधन संख्या 811 भी इसी आशय का है और उसके बल पर मैंने इसे पेश किया है। वास्तव में उन्होंने 'प्रत्याभूत' शब्द को बदल कर 'प्रदत्त' शब्द रखने का प्रयत्न किया है। मेरा

संशोधन बिल्कुल 811 जैसा ही है। यदि परिषद् को संख्या 811 स्वीकार्य है तो संख्या 805 भी समानरूपेण स्वीकार्य होनी चाहिये। क्या मैं निवेदन कर सकता हूं कि मेरा संशोधन संख्या 791 भी केवल शाब्दिक संशोधन नहीं है। इससे आशय पूर्णतः बदल जाता है, क्या मुझे एक ही मिनट में इसे पेश करने की अनुमति मिल सकती है?

**उपाध्यक्षः** नहीं।

**श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** इससे आशय बदल जाता है। मैं आपसे इस पर विचार करने का अनुरोध करता हूं। मैं आपके सुविचारपूर्ण निश्चय को शिरोधार्य करूंगा।

***उपाध्यक्षः** ऐसा है तो आप उसे पेश नहीं करेंगे।

(संशोधन संख्या 806 पेश नहीं किया गया।)

क्योंकि संशोधन संख्या 806 पेश नहीं किया गया है, अतः उस पर पण्डित भार्गव का संशोधन (सूची में संख्या 46) गिर जाता है।

(संशोधन संख्या 807 पेश नहीं किया गया।)

अब अनुच्छेद पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): मुझे इस संशोधन का समर्थन करने में बहुत प्रसन्नता है। ऐसा करते समय मैं परिषद् के समक्ष कुछ बातें विचारार्थ उपस्थित करती हूं।

श्रीमान्, इस विधान में किसी व्यक्ति के अधिकारों को पूरा कराने के लिये समुचित कार्य-प्रणाली द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में जाने का जो अधिकार दिया गया है वह अत्यन्त बहुमूल्य अधिकार है। मेरे विचार में यह ऐसा अधिकार है जो कि इस विधान द्वारा प्रत्याभूत समस्त मूलाधिकारों का मूल है। इस अनुच्छेद का मूल सिद्धान्त यह है कि इस विधान में प्रत्याभूत मूलाधिकारों की प्रभावशील तरीके से पूर्ति कराई जाये। हम सबको ज्ञात है कि जिस अधिकार की द्रुतगति तथा प्रभावशील प्रणाली से पूर्ति नहीं हो सकती, वह अधिकार प्रयोजनहीन होता है तथा उसका उस पत्र के बराबर भी मूल्य नहीं होता जिस पर कि वह अंकित हो। अतएव जैसे कि मैं कह चुकी हूं, इस अनुच्छेद से यह लाभ है कि किसी व्यक्ति को प्रत्याभूत मूलाधिकारों की सार्थक पूर्ति का आश्वासन इसी अनुच्छेद से मिलता है।

[श्रीमती जी. दुर्गाबाई]

श्रीमान् हम सबको ज्ञात है, तथा मसौदा-समिति को इसका पूरा ध्यान है, कि इंग्लिस्तान में अर्वाचीन काल में ही प्राचीन लेखों की कार्य-प्रणाली में महान् परिवर्तन हुआ है, और वहां एक नये कानून द्वारा लेखों के स्थान पर केवल आवेदन-पत्र प्रस्तुत करने की सादी प्रणाली रख दी गई है। कदाचित यही कारण है कि मसौदा-समिति ने इस अनुच्छेद में 'वन्द्युपस्थापन आदि लेखों के प्रकार के निदेश अथवा आदेश' ये शब्द रखे हैं।

एक और बात है कि सर्वोच्च न्यायालय मे जो अधिकार निहित किया गया है, उससे भारत के किसी भाग में स्थित उच्च न्यायालयों द्वारा ऐसे लेख निकालने के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, और न इससे संसद् के इस अधिकार पर ही प्रभाव पड़ता है कि वह किसी अन्य न्यायालय को उसके अधिकार-क्षेत्र में ऐसी शक्ति प्रयोग करने का अधिकार देने के लिये कानून बना सकती है। इस सम्बन्ध में एक प्रश्न उठ सकता है कि यदि उच्च न्यायालय लेख निकालने से इन्कार कर दे तो क्या स्थिति होगी, और इस विषय में कोई स्पष्ट प्रावधान न होने के कारण ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय को लेख निकालने के लिये आवदेन-पत्र देने का क्या निषेध है? मेरा उत्तर है 'नहीं', क्योंकि मेरे विचार में इन मामलों में 'रेस ज्यूडीकेटा'† का कोई प्रश्न नहीं है। कोई व्यक्ति कितने ही न्यायालयों में जा सकता है, और किसी न्यायाधीश के समक्ष लेख निकालने के लिये आवेदन-पत्र पेश कर सकता है, यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय स्वभावतः इस बात को ध्यान में रखेगा कि उच्च न्यायालय अथवा अन्य किसी न्यायालय ने लेख निकालने के विषय में नकारात्मक अथवा स्वीकारात्मक क्या आदेश दिया है। अतः आवदेन-पत्र पेश करने का निषेध नहीं है।

इस विषय में कई अन्य बातें भी कहनी हैं, किन्तु मेरे विचार में यही दो मुख्य प्रश्न हैं जो इस सम्बन्ध में उठ सकते हैं। एक तो यह कि सर्वोच्च न्यायालय को जो अधिकार दिया गया है आया कि उससे अन्य उच्च न्यायालयों को यह अधिकार नहीं रहता कि वे भी ऐसे लेख निकाल सके; मेरे विचार में मैं इस प्रश्न का उत्तर दे चुकी हूं। दूसरा प्रश्न यह है कि समवर्त्ती क्षेत्राधिकार की अवस्था में, अर्थात् जब उच्च न्यायालय यह लेख निकालने से इन्कार कर दे तब

†'रेस ज्यूडीकेटा' एक कानूनी सिद्धान्त है जिसका आशय यह है कि एक न्यायालय में किसी प्रश्न पर अंतिम निर्णय होने के पश्चात् वही प्रश्न अन्य किसी न्यायालय में पुनः पेश नहीं किया जा सकता।

क्या सर्वोच्च न्यायालय को आवेदन-पत्र भेजने का निषेध है? मैंने इसके उत्तर में भी कह दिया है कि कोई मनुष्य कितने ही न्यायालयों में जाकर आवेदन-पत्र दे सकता है।

श्रीमान्, इन थोड़े से शब्दों के साथ मुझे इस अनुच्छेद का समर्थन करने में बहुत प्रसन्नता है। मैं परिषद् की स्वीकृति के लिये इसका समर्थन करती हूं।

***रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं भी इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद के पारित होने पर संतोष प्रकट करने में अपनी विदुषी मित्र श्रीमती दुर्गाबाई का साथ देना चाहता हूं। इस अनुच्छेद को न्याय-पूर्वक अत्यधिक गम्भीर प्रकार का तथा अत्यन्त दूरगामी महत्त्व का कहा जा सकता है। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि इस परिषद् के सदस्यों को स्मरण हो जायेगा कि आज इस महान् परिषद् के उद्घाटन की द्वितीय वार्षिक जयन्ती है, और निस्सन्देह यह महत्त्वशून्य बात नहीं है कि मूलाधिकारों पर होने वाले वाद-विवाद की समाप्ति पर पहुंच कर इन अधिकारों के भवन की शिखर-शिला आज रखी जा रही है।

श्रीमान्, मैं परिषद् का ध्यान इस अनुच्छेद के आशय की ओर आकृष्ट करना चाहता हूं—उस आशय की ओर जो कि सम्भवतः प्रथम बार पढ़ने से स्पष्ट नहीं होता यह परिषद्, और इसके द्वारा वे विधान-मण्डल जिन्हें कि भविष्य में इस देश पर राज्य करना है, आत्मत्याग तथा स्वार्थहीनता के सराहनीय एवं महत्त्वपूर्ण कृत्य द्वारा कतिपय कानूनों तथा सिद्धान्तों की पूर्ति के कार्य को सर्वोच्च न्यायालय की वक्त के अन्तर्गत कर देते हैं और उन्हें भविष्य में चुनी जाने वाली संसदों के क्षेत्राधिकार तथा नियन्त्रण से बाहर रख देते हैं। वे उन्हें इस संविधान में प्रावहित प्रणाली से नियुक्त न्यायाधीशों के क्षेत्राधिकार में रख कर, इन अधिकारों को उन आक्रमणों तथा परिवर्तन से बचना चाहते हैं जो कि राजनीतिक दलबन्दी तथा परिवर्तनों के कारण उत्पन्न होते हैं। श्रीमान्, इसका यह कारण है कि हम सबका यह विश्वास है—और यही मूलाधिकारों के इस अध्याय का आशय है—कि मनुष्य के कुछ ऐसे अधिकार हैं जो अखण्ड हैं, जिनके विषय में मानव-द्वारा निर्मित कोई विधान-मण्डल उंगली नहीं उठा सकता, इसी कारण इन मूलाधिकारों का इस प्रकार निर्माण हुआ है और सर्वोच्च न्यायालय को अपील करने के इस प्रावधान द्वारा उनकी रक्षा तथा प्रमाण की व्यवस्था की गई है।

श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं इसका आशय यह है कि एक व्यक्ति की ऐसे लोगों द्वारा की गई सामूहिक कार्यवाही से भी रक्षा की जानी चाहिये, जो कि कदाचित् उसकी आवश्यकताओं, उसके अधिकारों तथा उसके दावों को पूर्णतया

[श्री रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा]

न समझ सकते हों। मैं तो विश्वासपूर्वक यह भी कह सकता हूं कि व्यक्तित्व की पूजा तथा अन्त:करण की प्रेरणाओं के प्रति श्रद्धा तभी हो सकती है जब मानव-जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण हो, मानव-जीवन की ऐसी परख हो जो पूर्णतया आध्यात्मिक है। श्रीमान्, यदि हमारी समस्त जनता तथा उनका दृष्टिकोण पूर्णतया भौतिकवाद का ही होता, यदि उचित अनुचित का निर्णय बहुमत से ही होना होता, तो मूलाधिकारों का तथा उन्हें उच्च न्यायालय के रक्षण में रखने का कोई महत्त्व नहीं होता। क्योंकि हमें यह विश्वास है कि लोकतंत्र की पूर्ण तथा सबसे ठीक परिभाषा में यह बात निहित है कि प्रत्येक मानव आदरणीय है, व्यक्तित्व पूजनीय है तथा व्यक्ति के अन्त:करण की प्रेरणाएं अनुसरणीय हैं। सच तो यह है कि इस परिभाषा के ये ही आधारभूत तत्व हैं। और अपने इसी विश्वास से प्रेरित होकर हमने इन अधिकारों को कानूनी स्वरूप दिया है।

श्रीमान्, मैं तो यह भी समझता हूं कि यदि इन अधिकारों को सर्वमान्य बनाना है, उनको इतना बल देना है कि वे स्वयं ही चिरस्थायी रह सकें तो अन्ततोगत्त्वा हमें नैतिक धर्म का सहारा लेना होगा, नहीं, हमें उस धर्म के पीछे स्थित सर्वशक्तिमान परमेश्वर का सहारा लेना होगा। श्रीमान्, महात्मा गांधी ने अपने एक चिरस्मरणीय वाक्य में, ऐहिक संविधान बनाने तथा उसमें सर्वशक्तिमान् का नाम न रखने की इच्छा की चर्चा करते हुये कहा था—"आप उसके नाम को विधान से बाहर रख सकते हैं, किन्तु आप उसे संविधान से अलग न कर पायेंगे।" श्रीमान्, मेरा यह विश्वास है कि इन मूलाधिकारों को तथा इनमें सन्निहित तत्वों को मान्यता देने का अर्थ ही यह है कि हम यह मानते हैं कि सब मानवीय प्रतिष्ठानों के परे, मानवीय विधान-मण्डलों के ऊपर एक ऐसी महान् शक्ति जिसके समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ता है और इन सबके ऊपर ऐसे अधिकार हैं जिनका सम्मान करना ही पड़ता है।

श्रीमान्, हमने इन मूलाधिकारों में कुछ इस आशय के प्रावधान रखे हैं—और शायद वर्तमान अवस्थाओं में ये आवश्यक हैं भी—कि सरकारी संस्थाओं में विभिन्न धर्मों की शिक्षा न दी जा सकेगी, जिससे कि संस्थाओं के शान्त वातावरण में वादविवादों से विघ्न न पड़े। किन्तु मुझे आशा है और मैं प्रार्थना करता हूं कि इन प्रावधानों के द्वारा, यद्यपि ये बुद्धिमत्तापूर्ण हैं फिर भी, ऐसे नैतिक सिद्धान्तों की शिक्षा पर रोक न रहें जो सर्वमान्य सत्यों के आधार पर, परमात्मा के अस्तित्व

के आधार पर तथा ईश्वरीय प्रेरणा से उदित वैयक्तिक अन्तर्विवेक के आधार पर स्थापित हुये हैं। मुझे विश्वास है कि उन विश्वमान्य तथ्यों पर चलने से धार्मिक विवादों से बचा जा सकता है। यह असंदिग्ध है कि हमारी राष्ट्रीय संस्कृति तथा सभ्यता इसी विश्वास तथा श्रद्धा पर आधारित तथा स्थिर है; अन्यथा इन मूलाधिकारों का कोई अर्थ नहीं होता। एक पूर्ववक्ता ने पूछा था कि "इस संविधान में परिवर्तन करने का प्रावधान क्यों रखा गया है? इन अधिकारों को ऐसा क्यों न रखा जाये कि उनके खण्डन की सम्भावना भी न हो सके?" मैं उन्हें उत्तर दूंगा— "यदि हम लोगों की श्रद्धा तथा निष्ठा ही समाप्त हो जाती है तो इन अधिकारों की शक्ति द्वारा रक्षा करने से कोई लाभ न होगा। उस हालत में अधिकार और उसकी मूल शक्ति दोनों माया-मृग सम ही रहेंगे। किन्तु यदि निष्ठा रहेगी तो कोई भी उनका उल्लंघन न करेगा।"

इस अनुच्छेद द्वारा हम सर्वोच्च न्यायालय को एक शक्ति प्रदान करते हैं, एक प्रतिष्ठा तथा एक सम्मान प्रदान करते हैं, और इन सबको पाने के कारण उसके न्यायाधीश पूरी ईमानदारी तथा सच्चाई से अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर सकेंगे। जब हम अनुच्छेद 103 से आरम्भ होने वाले भाग पर आवें, तब हमें इस अनुच्छेद के पूर्ण आशय को स्मरण रखना चाहिये, क्योंकि उस भाग में हमें उन उपायों पर विचार करना होगा जिनके द्वारा इस देश में एक ईमानदार तथा पूर्णतः न्यायप्रिय न्याय-विभाग की स्थापना की जा सकती है। जब हम उस भाग पर विचार करें तब हमें इस भाग का स्मरण रखना चाहिये और इस बात की ठीक व्यवस्था करनी चाहिये कि इन विभिन्न प्रावधानों की न्यायपूर्वक तथा निर्भयतापूर्वक पूर्ति हो।

अब मैं अगली बात को लेता हूं और मैं परिषद् से प्रार्थना करता हूं कि कृपा करके मुझे इस विषय पर कुछ शब्द कहने की अनुमति दे कि विधान के इस भाग में अल्पसंख्यकों के अधिकारों तथा मूलाधिकारों को इस प्रकार मिश्रित कर दिया गया है कि वे अलग भी नहीं हो सकते। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि यह मिश्रण उचित तथा आवश्यक है। आखिर, अल्पसंख्यक यही चाहते हैं कि व्यक्तियों के अधिकारों का पक्का संरक्षण होना चाहिये। यदि ऐसा किया जाये तो 'अल्पसंख्यकों के अधिकारों' की आवश्यकता ही न रह जायेगी और न इनकी मांग ही रह जायेगी। पर शासन की जनतंत्रात्मक प्रणाली में, जहां कि बहुसंख्यकों के मत से अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय हो सकता है, अल्पसंख्यकों के अधिकारों का उल्लेख होना ही चाहिये। किन्तु अपने धार्मिक विश्वासों को मानने

[रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा]

का, अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को अपनाये रखने का व्यक्ति को अधिकार है; स्वतन्त्र इच्छाशक्ति और स्वतन्त्र विचार रखने वाले मानव को—उस मानव को जिस पर यह कार्य करने का कर्त्तव्यभार है—एक मनुष्य के नाते कुछ अधिकार प्राप्त हैं। और अगर इन अधिकारों को अन्ततः सुरक्षित रखा जाता है तो 'अल्पसंख्यकाधिकारों' की जो मांग है वह अपने आप ही लुप्त हो जायेगी। इसी कारण इन सामान्य अधिकारों के साथ अल्पसंख्यकों के अधिकार की चर्चा की गई है। अपनी जाति की ओर से, जिसका यहां प्रतिनिधित्व करने का मुझे सम्मान प्राप्त है, मैं कहना चाहता हूं—और मुझे विश्वास है कि मैं कई अन्य लोगों की भावनाओं को व्यक्त कर रहा हूं—कि यदि इन अधिकारों का वास्तव में उसी प्रकार आरक्षण किया जाये किस प्रकार कि इस विधान में करने का प्रयत्न किया गया हैं, यदि मूलाधिकारों का, जिनमें कि अल्पसंख्यकों के अधिकार भी शामिल है; पूर्णतया असंदिग्ध तरीके से संरक्षण किया जाये, तो हमारे लिये किसी प्रकार के राजनैतिक आरक्षणों की आवश्यकता न होगी और हम उनकी मांग भी तब तक न करेंगे जब तक कि संविधान के इस भाग को कार्यान्वित करने में इसके प्रावधानों का गलत अर्थ नहीं निकाला जाता और इसके द्वारा किसी के अधिकारों को पददलित नहीं किया जाता।

श्रीमान्, हमारे देश की तथा हमारे नेताओं की इच्छा यह है कि इस विस्तृत देश में राजनैतिक एकरूपता लाने के लिये कदम बढ़ाया जाये। दुर्भाग्यवश अल्पसंख्यकों को राजनैतिक आरक्षण देने की आवश्यकता से उस राजनैतिक एकरूपता के टूटने का खतरा पैदा हुआ और कुछ मात्रा में तो वह टूट भी गयी। किन्तु स्मरण रहे कि यह आरक्षण धार्मिक और सांस्कृतिक और वैयक्तिक अधिकारों के कारण आवश्यक समझे गये थे, और केवल राजनैतिक विशेषाधिकारों अथवा उनसे प्राप्त हो सकने वाले परिलाभों के कारण आवश्यक नहीं समझे गये। और जब तक इन सांस्कृतिक तथा वैयक्तिक अधिकारों का आरक्षण होता है, तब तक हमें किसी अन्य राजनैतिक आरक्षण की आवश्यकता नहीं है। अतएव मुझे भरोसा है और मेरी प्रार्थना है कि हम सब लोग यह सर्वदा स्मरण रखें कि राजनैतिक बंटवारे तथा प्रादेशिक स्वतंत्रता के नारे तब तक और उस हद तक न उठाये जा सकेंगे जिस समय तथा हद तक सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अन्ततोगत्त्वा सुरक्षित ये अधिकार, अपने से संलग्न सब परिणामों सहित, ईमानदारी से लागू किये जाते हैं और पूरी तरह कार्यान्वित किये जाते हैं। हम ऐसा कुछ नहीं करेंगे

जिससे कि वह नारा पुनः उठे। जहां तक इस छोटी-सी ईसाई जाति का सम्बन्ध है, हमने काफी हद तक इन राजनैतिक आरक्षणों का परित्याग कर दिया है और हम और भी आगे बढ़ कर स्थानों के उस आरक्षण को भी छोड़ने के लिये तैयार हैं जो कि कुछ प्रान्तों में रखे गए हैं और यदि हम ऐसा करते हैं तो वह इसी आधार पर कि जिस धारणा से प्रेरित होकर हमें इन मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई है वह ऐसी है कि उसके होने पर हमें अपनी सुरक्षा का पूरा आश्वासन मिल जाता है और उस आश्वासन को और भी सुदृढ़ करने के लिये अतिरिक्त राजनैतिक आरक्षणों तथा विशेषाधिकारों की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

श्रीमान्, मैं जानता हूं कि इस विधान में कई अन्य संरक्षण अब भी हैं, जैसे कि पिछड़ी हुई जातियों के लिये आर्थिक संरक्षण आदि हैं। मुझे विश्वास है कि परिवर्तन काल के लिये इस प्रकार की व्यवस्था अपेक्षित है, हमारी जनता के बहुत से वर्गों को इस प्रकार से आश्वासन देना बुद्धिमत्ता तथा अक्लमन्दी की बात है। किन्तु, श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि हम इस समय जो कुछ कर रहे हैं, उसका पूर्ण तथा तर्कसंगत आशय यह है कि एक समय आना चाहिये जब कि जो कुछ आर्थिक अथवा अन्य सहायता दी जाये वह किसी वर्ग विशेष की मांगों के आधार पर न दी जाये, अपितु व्यक्ति की मांग के आधार पर दी जाये। श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि ऐसा समय आयेगा जबकि जो लोग विशेष सहायता मांगेंगे अथवा जिन्हें उसकी आवश्यकता होगी, उन्हें वह प्राप्त हो जायेगी और इसके लिये जातीयता के आधार पर आरक्षणों अथवा अभिरक्षणों की आवश्यकता न होगी; जबकि हमारे कानून निर्माता तथा नेता वैयक्तिक मामलों पर विचार कर सकेंगे, जिसमें साम्प्रदायिक अथवा सामाजिक पृष्ठभूमि का अवश्य ध्यान चाहे रखा गया हो, किन्तु वह सहायता अथवा वह रियायत सब व्यक्तियों को दी जायेगी, किसी जाति अथवा वर्ग-विशेष तक सीमित न होगी। ऐसा होने पर ही और ऐसी भावना के आने पर ही हमारे वर्ग-भेद—जहां तक कि वह राजनैतिक दृष्टि से भयावह हैं और राजनैतिक पार्थक्य पैदा करते हैं—दूर होंगे। दूसरी ओर यदि सांस्कृतिक, धार्मिक तथा इस प्रकार के अन्य अधिकारों का अभिरक्षण कर दिया जाये तो मैं कोई कारण नहीं देखता कि इस देश की विभिन्न तथा इसका विरंगापन, जो गत वर्षों में राजनैतिक निर्बलता का कारण रहा है, अब देश के लिये शक्ति तथा शान का कारण क्यों न बन जाय। हम सच्चे हृदय से भरोसा करते हैं कि जिस भावना से हमारे न्यायाधीश भविष्य में इन अधिकारों की व्याख्या करेंगे, उनका अर्थ निकालेंगे, तथा उन पर अमल करेंगे, जिस भावना से बहुसंख्यक जाति उनको क्रियान्वित करेगी, उससे अल्पसंख्यकों की सारी आशंकायें दूर हो जायेंगी तथा

[रेवरेण्ड जेरोम डीसूजा]

उन्होंने राजनैतिक अधिकारों के परित्याग कर देने का जो मार्ग अब जानबूझ कर चुना है उसमें उन्हें प्रोत्साहन मिलेगा। तभी चल कर निकट भविष्य में ही—मैं दूर भविष्य की प्रतीक्षा नहीं करता—इन 33 करोड़ लोगों की राजनैतिक एकता एक तरफ हो जायेगी, और समस्त जातियों के लोग नागरिक समानता के आधार पर, किन्तु अपने-अपने धर्म को मानते हुये, अपने विश्वासों तथा अपने आदर्शों पर चलते हुये, और उन विश्वासों तथा निष्ठा से अपनी वैयक्तिक शक्ति प्राप्त करते हुये, हमारी मातृभूति की महानता तथा समृद्धि के लिये कंधे से कंधे मिला कर एक साथ कार्य करेंगे। (*प्रशंसा-ध्वनि*)

**श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर:** उपाध्यक्ष महोदय, मेरे मतानुसार लोकतंत्र में सर्वोच्च न्यायालय नागरिकों के अधिकारों का सर्वोच्च संरक्षक होता है। मैं तो और भी आगे बढ़ कर यह भी कहने के लिये तैयार हूं कि वह लोकतंत्र की आत्मा होता है। जो कार्यकारिणी कुछ समय के लिये अधिकारारूढ़ होती है वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर सकती है, अत: ऐसा सर्वोच्च न्यायालय अवश्य होना चाहिये, जो शक्तिशाली हो तथा दिन प्रति दिन के उन आवेशों से प्रभावित न हो जिनके कारण एक विशेष प्रकार के लोग अधिकारारूढ़ हो जाते हैं और फिर थोड़े ही समय के पश्चात् अधिकारच्युत भी हो जाते हैं। संसद् तीन-चार वर्ष रहेगी, तो हो सकता है उस समय में बहुत-सी सरकारे बनें और बिगड़े, और यदि व्यक्ति के मूलाधिकारों को उस समय की सरकार की कृपा पर छोड़ दिया जाये, तो वे मूलाधिकार कहला ही नहीं सकते। दूसरी ओर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों पर भरोसा किया जा सकता है कि वे नागरिकों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों के समानरूप से संरक्षक रहेंगे, चाहे वे नागरिक अल्पसंख्यक हों अथवा बहुसंख्यक। जहां तक मूलाधिकारों का सम्बन्ध है, मेरा विनीत मत यह है कि व्यक्तिगत तौर पर नागरिकों के अधिकारों और विशेषाधिकारों में कोई अन्तर नहीं है, चाहे वे अल्पसंख्यक जाति के हों अथवा बहुसंख्यक जाति के हों। दोनों को अपने विश्वास और धर्म की स्वतंत्रता होनी चाहिये, अपनी भाषा तथा स्वाभाविक लिपि के प्रयोग की स्वतंत्रता होनी चाहिये। इन और अन्य अधिकारों पर ध्यान से निगरानी रखनी चाहिये और इसी अभिप्राय से सर्वोच्च न्यायालय को अन्तिम सर्वोपरि क्षेत्राधिकार दिया गया है।

जहां तक अल्पसंख्यकों के अधिकारों का सम्बन्ध है, इस विधान के अनुच्छेद 299 में कुछ और भी प्रावधान रखे गये हैं, जिनके अनुसार उन हितों का ध्यान रखने के लिये और संघ के प्रधान को तथा गवर्नर को भी इस बात की रिपोर्ट देने के लिये, एक अथवा अनेक विशेष प्राधिकारी नियुक्त किये जायेंगे कि इस विधान के इस भाग में तथा अन्य भागों में उल्लिखित अल्पसंख्यक-सम्बन्धी अधिकारों की किस हद तक रक्षा की गई है, और प्रधान तथा गवर्नर का कर्त्तव्य होगा कि वह उस रिपोर्ट को व्यवस्थापक-मण्डल के समक्ष रखे। किन्तु इस प्रावधान से ही काम न चलेगा, यह भी आवश्यक है कि इसके साथ ही सर्वोच्च न्यायालय भी सर्वदा देखभाल करता रहे कि इन अधिकारों का हनन तो नहीं किया जा रहा और उसको यह शक्ति भी हो कि वह किसी शासन की इस बारे में की गई गलती को ठीक कर सकें।

श्रीमान्, मैं पूर्ववक्ताओं से सहमत हूं, जिन्होंने कहा था कि समस्त विधान में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यही अनुच्छेद है, क्योंकि यह जनता के अधिकारों का संरक्षक है। जहां तक मुझे पता है, इन्हीं वर्षों में कुछ प्रान्तीय विधान-मण्डलों ने कानून बनाये हैं जिससे कि वन्ध्युपस्थापन का अन्त कर दिया गया है। जनता के अधिकारों के बारे में ऐसी मनमानी करने की छूट कभी नहीं दी जानी चाहिये।

खण्ड (4) के विषय में मेरे मित्र ने सुझाव रखा था कि यह खण्ड निकाल देना चाहिये। मैं उनके साथ सहमत नहीं हूं, यद्यपि मैं मानता हूं कि यहां भाषा कुछ व्यापक है और उसके दुरुपयोग की सम्भावना है। मुझे विश्वास है कि सरकार को इतना तो अधिकार देना ही चाहिये। यदि कोई सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित की जाती है तो मुझे विश्वास है कि इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों को केवल सद्यस्कृत्यस्थिति के समय के लिये ही निलम्बित किया जायेगा और तत्पश्चात् भी छः मास के लिये नहीं, यद्यपि प्रधान को यह अधिकार है कि वैसी स्थिति के समाप्त होने के पश्चात् भी छः मास तक वह उसे जारी रख सकता है। प्रधान यह भी कह सकता है कि यह खण्ड केवल सद्यस्कृत्यस्थिति के समय के लिये ही स्थगित किया जाये, और उस स्थिति के समाप्ति के पश्चात् अधिक छः मास के लिये नहीं।

***श्री एच.वी. कामतः** एक औचित्य प्रश्न है, श्रीमान्। मैं अपने माननीय मित्र का ध्यान इस अनुच्छेद के खण्ड (4) तथा अनुच्छेद 280 की ओर आकृष्ट करूंगा और उनसे अनुरोध करूंगा कि वह इन दोनों को मिलाकर पढ़ें। अनुच्छेद 280 में :

[श्री एच.वी. कामत]

"प्रधान आदेश द्वारा घोषणा कर सकेगा कि इस संविधान के अनुच्छेद 25 के द्वारा प्रत्याभूत अधिकार ऐसे आदेश में उल्लिखित ऐसी अवधि के लिये निलम्बित रहेंगे, जो उस उद्घोषणा के प्रवर्तनशून्य होने के पश्चात् छः मास की अवधि से परे विस्तृत न हो सकेगी।"

क्या अनुच्छेद 280 के साथ पढ़ने पर खण्ड (4) के अशुद्ध अर्थ निकलने की सम्भावना नहीं है? क्या अनुच्छेद 280 सब मूलाधिकारों पर लागू होता है? क्या, श्रीमान्, इसका यह आशय है कि अस्पृश्यता निवारण, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अधिकार भी निलम्बित हो जायेंगे?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैं इसका उत्तर दे दूंगा।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** अनुच्छेद 280 का यह आशय नहीं है कि प्रधान को उन अधिकारों को निलम्बित करना ही होगा। वह इनको अथवा इन सबको निलम्बित करने के लिये बाध्य नहीं है। प्रधान इस भाग में उल्लिखित सब अधिकारों को स्थगित करने के लिये बाध्य नहीं है। अतएव अनुच्छेद 280 से कोई आशंका उत्पन्न नहीं होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त जिस व्यक्ति को यह शक्ति दी गई है वह संघ का प्रधान है जो सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के बराबर है। प्रधान प्रशासन चलाने वाला नहीं है। प्रशासन चलाने वाले तो उसके मन्त्री होते हैं। वह तो आवश्यकता पड़ने पर ही हस्तक्षेप करता है। इन परिस्थितियों में मुझे विश्वास है कि इस भाग में वर्णित अधिकार सर्वोच्च न्यायालय तथा प्रधान के भी हाथ में सुरक्षित हैं। अतएव जहां तक मि. नज़ीरुद्दीन के संशोधनों का सम्बन्ध है, मैं उनसे सहमत नहीं हूं। खण्ड (1) के अन्तर्गत अन्य न्यायालयों को सम्मिलित करना भी आवश्यक नहीं है। उप-खण्ड (3) में यह प्रावधान रख दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय को जो शक्तियां दी गई हैं, वैसी ही अन्य न्यायालयों को भी दी जा सकती हैं। खण्ड (4) में केवल उन्हीं अधिकारों की प्रत्याभूति नहीं दी गई है जो कि खण्ड (1) में प्रत्याभूत हैं, वरन् उनकी भी प्रत्याभूति है जो कि खण्ड (3) में प्रत्याभूत हैं। मेरे मित्र मि. नज़ीरुद्दीन अहमद खण्ड (4) में समाविष्ट बातों को खण्ड (1) में रख देना चाहते है। वर्तमान भाषा पर्याप्त दिखाई देती है और उसमें संशोधन आवश्यक नहीं है। संशोधन सुनिश्चित भी नहीं है। वह तो कुछ बेडौल है। इन परिस्थितियों में मैं मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधनों का तथा खण्ड (4) को निकाल देने के लिये जो संशोधन है, इसका विरोध करता हूं। अनुच्छेद को विद्यमान रूप में स्वीकार कर लेना चाहिये।

*__श्री बी. पोकर साहब__ (मद्रास : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस अनुच्छेद पर कुछ शब्द कहना चाहता हूं। जैसा कि श्री अनन्तशयनम् आयंगर कह चुके हैं मैं भी कहना चाहता हूं कि सारे विधान में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है और हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि इस अनुच्छेद द्वारा दत्त अधिकार अन्य अनुच्छेदों से या इसी अनुच्छेद के किसी और खण्ड से नष्ट न जो जायें अथवा किसी प्रकार उनमें परिवर्तन न हो जाये। श्रीमान्, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् के हमारे अनुभवों ने हमें बताया है कि हमें नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा के विषय में अब तो अंग्रेज़ों के राज्यकाल से भी कहीं अधिक सावधान रहना होगा। मेरा तो यह कहना है कि अनेक प्रान्तीय सरकारों के इन्हीं दिनों के व्यवहार ने हमें यह सिखा दिया है कि इस बात के लिये सावधानी से ऐसी कार्यवाही करने की आवश्यकता है कि उन्होंने जिस प्रकार का व्यवहार किया है वैसा वे आगे न कर पाये। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने, उन शक्तियों की आड़ में, जो कि कहते हैं उनको मिली हुई हैं, लोगों के पवित्र अधिकारों तथा स्वातन्त्र्य के विषय में जो कार्यवाही की है, मैं उसी की चर्चा कर रहा हूं। श्रीमान्, प्राय: प्रान्तीय सरकारों के लिये ऐसा कहना तो नियम-सा हो गया है कि—"देखो, सद्यस्कृत्यता की स्थिति उत्पन्न हो गई है, अत: जनता के हितार्थ हमें जन-सुरक्षा-कानून द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करके इतने व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को कम करना होगा तथा उन्हें कारागृह में बन्द करना होगा।" ऐसा किया जाता है और वे लोग जान भी नहीं पाते कि उन्हें किस आधार पर पकड़ा गया है, उन्होंने राज्य अथवा देश की शान्ति के विरुद्ध कौन-सा ऐसा पाप किया है जिससे कि इस अनुत्तरदायी तरीके से उनकी स्वतन्त्रता को कम कर दिया गया है और उन्हें इसी प्रकार की मानसिक स्थिति में सप्ताहों और महीनों रखा जाता है, और उन्हें बताया भी नहीं जाता कि उन्हें किसलिये पकड़ा गया है तथा बन्दी बनाकर रखा गया है, यद्यपि जिस कानून के अधीन सरकार ने उन्हें पकड़ा है उसके प्रावधानों के अनुसार सरकार बाध्य है कि वह उन्हें उनकी गिरफ्तारी तथा बन्दी बनाये रखने के कारणों से अवगत कराये।

श्रीमान्, अर्वाचीन काल में ही जिस अनुत्तरदायी ढंग से काम किये गये हैं उन पर यदि हम गौर करें तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन सरकारों को जो शक्तियां प्रदान की जायें उनके दुरुपयोग तथा अनुचित उपयोग के विरुद्ध अतीव प्रबल अभिरक्षण रखे जायें। श्रीमान्, मैं एक बात कहना चाहता हूं कि हमें एक सिद्धान्त सदा याद रखना चाहिये और विधान-निर्माण करते समय ध्यान में रखना

[श्री बी. पोकर साहब]

चाहिये कि मन्त्रिमण्डल बनें या बिगड़े किन्तु न्याय-प्रशासन चलता रहना चाहिये तथा उस पर इन मन्त्रिमण्डलों के जीवन की उथल-पुथल का तथा सरकार में परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये। किसी सार्वजनिक प्रयोजनार्थ इन व्यवस्थाओं का प्रयोग नहीं किया जाता, वरन् अपनी शक्ति को बनाये रखने के लिये, अपने दल अथवा गिरोह को अधिकारारूढ़ बनाये रखने के लिये ही, उनका प्राय: करके प्रयोग किया जाता है। ऐसी वस्तुस्थिति को कभी नहीं रहने देना चाहिये। श्रीमान्, मैं एक उदाहरण दूंगा।

मद्रास में विधान-मण्डल का अधिवेशन हो रहा था, और अकस्मात् एक दिन सायंकाल एक विज्ञप्ति जारी की गई विधान-मण्डल का अधिवेशन अनिश्चित अवधि के लिये स्थगित किया जाता है। ऐसा क्यों किया गया, यह किसी को पता नहीं था, और अगले दिन सवेरे एक अध्यादेश (आर्डिनेंस) जारी किया गया। आप जानते हैं उसका क्या आशय था? अन्य कई बातों के अतिरिक्त जन-सुरक्षा अधिनियम के अनुसार उस समय बहुत से लोगों को गिरफ्तार करके नज़रबन्द कर दिया गया था, और उन्हें यह भी नहीं बताया जाता था कि उन्हें क्यों पकड़ा गया है और क्यों नज़रबन्द रखा गया है। अस्तु, नज़रबन्दों ने उन उपायों से काम लिया जो कि उस समय के कानून के अधीन उपलब्ध थे। उच्च न्यायालय में वन्द्युपस्थापन के लिये आवेदन-पत्र गये हुये थे, और उच्च न्यायालय ने उचित मामलों में वन्द्युपस्थापन-लेख जारी कर दिया। अब होने यह लगा कि ज्यों ही उच्च न्यायालय की आज्ञा से कोई व्यक्ति मुक्त होता, त्यों ही उसे पुन: बन्दी बना कर कारागृह में रख दिया जाता। सरकार इन सब बातों से असन्तुष्ट थी। और उच्च न्यायालय, आपराधिक कार्य-प्रणाली संहिता की धारा 491 द्वारा प्रदत्त वैध शक्तियों का जिस प्रकार स्वतंत्रता से प्रयोग कर रहा था उससे सरकार चिढ़ी हुई थी। ऐसा हुआ कि एक दिन सायंकाल विधान-मण्डल को भंग कर दिया गया तथा और अगले दिन प्रात:काल एक अध्यादेश (आर्डिनेंस) जारी कर दिया गया जिससे आपराधिक कार्य-प्रणाली संहिता की धारा 491 के अन्तर्गत लेख निकालने का अधिकार उच्च न्यायालय से छीन लिया गया। श्रीमान्, इसमें क्या नेकनीयती हो सकती थी? क्या कोई मनुष्य कह सकता है कि यह कार्यवाही नेकनीयती से की जा सकती थी? यह तो सरकार को दी हुई शक्तियों का अत्यन्त कलंकपूर्ण

प्रयोग था। प्रदत्त शक्तियों की आड़ लेकर उन्होंने अत्यन्त अनुत्तरदायी तरीके से काम किया। अतएव, श्रीमान्, मैं यही कहता हूं कि न्यायालयों की शक्तियों को सरकार की इच्छा तथा प्रसन्नता पर नहीं छोड़ना चाहिये, और उन्हें किसी अवस्था में भी न्यायालयों में निहित शक्तियों में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं होनी चाहिये। यदि वैयक्तिक-स्वातन्त्र्य की प्रत्याभूति में तथा इसकी पूर्ति करने के लिये न्यायालयों को प्रदत्त शक्ति में ही हस्तक्षेप करने की अनुमति दे दी जाये, तो कोई भी सुरक्षित नहीं है, क्योंकि उस प्रत्याभूति के आधार पर ही लोक-तन्त्रात्मक सरकार स्थित होती है। न यहां बहुसंख्यक जाति का प्रश्न है, और न अल्पसंख्यक जाति का ही प्रश्न है। बात तो यह है कि जिस समय जो भी लोग अधिकारारूढ़ होते हैं वे ऐसे व्यक्तियों को अथवा व्यक्तियों के वर्गों को जेल में ठूंस देते है जिन्हें वे पसन्द नहीं करते अथवा जिनका स्वतन्त्र रहना वे पसन्द नहीं करते और शायद वे ये सब बातें इस आशंका से करते हैं कि उनके विपक्षी उस शक्ति को समाप्त कर देंगे जिसका वे उपभोग कर रहे हैं। यह और बात है कि ऐसे अवसरों के लिये अभिरक्षण किये जायें जब देश में व्यापक रूप से शान्ति भंग हो गई हो, किन्तु यह बिल्कुल दूसरी बात है कि सरकार को इस सद्यस्कृत्यस्थिति की शक्तियों के अन्तर्गत मनमानी करने का अधिकार दे दिया जाये, और यह भी अधिकार दे दिया जाये कि नागरिकों को वैयक्तिक स्वतन्त्रता की रक्षा करने की जो शक्ति न्यायालयों में सन्निहित है उसे भी सरकार छीन सके।

अब, श्रीमान्, मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि यह निस्संदेह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अधिकार है जो कि इस विधान के आधीन दिया गया है, किन्तु मुझे भय है कि एक हाथ से जो कुछ दिया गया है, खण्ड (4) के द्वारा दूसरे हाथ से उसे छीन लिया जा रहा है, अतः इस खण्ड को निकाल देने के संशोधन का मैं हार्दिक समर्थन करता हूं। इस खण्ड की कोई आवश्यकता ही नहीं है। हां, सद्यस्कृस्यस्थिति के समय काम आने वाली शक्तियों के विषय में धारा 280 में प्रावधान है, और उसमें भी परिवर्तन की आवश्यकता हैं, और उस अनुच्छेद तक पहुंचने पर हमें उस पर विचार करना होगा, किन्तु इस खण्ड के प्रावधानों द्वारा उन शक्तियों में भी हस्तक्षेप होता है जो पिछले खण्डों द्वारा प्रदत्त हैं, और मैं उस खण्ड के निकाल देने के संशोधन का पूरे जोर से समर्थन करता हूं। इसकी कोई आवश्यकता नहीं है, और जैसा कि एक माननीय सदस्य ने कहा था, अनुच्छेद 280 के साथ इसका मेल नहीं खायेगा, और इससे उलझनें पैदा होंगी। इन थोड़े से शब्दों के साथ, मैं इस खण्ड को हटा देने के संशोधन का समर्थन करता हूं।

***प्रोफेसर शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, अब हम इस अध्याय के अन्तिम भाग पर आ गये हैं। इस अनुच्छेद 25 द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्राप्त होता है कि इस अनुच्छेद में प्रत्याभूत सभी स्वतन्त्रताओं को वह उपलब्ध कर सके। वह सर्वोच्च न्यायालय जा सकता है और वहां यह मांग कर सकता है कि इन कानूनों को कार्यान्वित किया जाये। श्रीमान्, यह इस अध्याय का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है। बिना इसके उन सब अनुच्छेदों का कोई अर्थ नहीं रहेगा जिन्हें हमने स्वीकार किया है। जैसा कि मेरे माननीय मित्र श्री आयंगर ने कहा है, ठीक ही यह संविधान का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनुच्छेद है। वास्तव में यह ऐसा अनुच्छेद है जो समस्त मूलाधिकारों को प्रभावी बनाता है। यदि किसी के साथ अन्याय हो तो इस अनुच्छेद के अधीन कोई भी उसका उपाय कर सकता है।

श्रीमान्, मेरे विचार में इस अनुच्छेद की वर्तमान भाषा अत्यन्त उपयुक्त है, और खण्ड (4) को निकाल देने की मांग हमारे राष्ट्रीय विकास की वर्तमान अवस्था में उपयुक्त नहीं है, यद्यपि सिद्धान्त रूप में यह ठीक कही जा सकती है। अमरीका और इंग्लिस्तान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके अधीन मूलाधिकारों को स्थगित किया जा सके। पर हमारे विकास की वर्तमान स्थिति में, जब कि राज्य का वास्तव में निर्माण हो रहा है, मेरे विचार में संविधान में प्रावहित सद्यस्कृत्यस्थिति में इन अधिकारों को निलम्बित करने का यह प्रावधान अपेक्षित है। जिन अनुच्छेदों के अधीन इन अनुच्छेदों को निलम्बित किया जा सकता है, उन पर विचार करने का अवसर भी हमें मिलेगा, और हम उस समय यह देखेंगे कि वे प्रावधान न्यायसंगत है अथवा नहीं। किन्तु मेरे विचार में यह कहना तो बहुत आगे बढ़ना होगा, विशेषत: हमारे राष्ट्रीय विकास की इस अवस्था में, कि सद्यस्कृत्यस्थिति, विद्रोह अथवा ऐसे ही अवसरों पर भी राज्य के पास विधान के इस भाग को निलम्बित करने की शक्ति न होनी चाहिये। मेरे विचार में बहुत शीघ्र ही, जब कि हमारा राज्य स्थिर हो जायेगा, हम खण्ड (4) को हटा सकेंगे।

खण्ड (3) संसद् को यह शक्ति देता है कि वह कानून बनाकर स्थानीय न्यायालयों को इस प्रश्न पर निर्णय करने की शक्ति दे सकती है। मेरे विचार में इससे भी, किसी हद तक, यहां प्रदान किये हुये अधिकारों का न्यूनन होता है। श्रीमान्, सर्वोच्च न्यायालय अन्तिम प्राधिकारी होता है। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय का मेरे हृदय में बहुत सम्मान है। मैं चाहता हूं कि सर्वोच्च न्यायालय ऐसा निकाय हो जो संसद् से सर्वथा स्वतन्त्र हो। अमरीका के समान हमारे सर्वोच्च न्यायालय में संसद् का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। अतएव मेरे विचार में खण्ड

(3) यहां नहीं होना चाहिये था, जिसमें लिखा है कि संसद् को कानून बना अन्य किसी न्यायालय को भी इस सम्बन्ध मे निश्चय करने की शक्ति देने का अधिकार होगा। यदि संसद् नहीं चाहती हो कि अधिकार की पूर्णतः पूर्ति होनी चाहिये, तो वह इस विषय पर निर्णय करने का अधिकार अन्य किसी न्यायालय को भी दे सकती है। मुझे आशा है कि प्रथम दस-पन्द्रह वर्षों में, जब कि हम इस विधान का परीक्षण करेंगे, हमें यह पता लग जायेगा कि आया कोई संसद् ऐसी दृढ़संकल्प है कि इन अधिकारों को निराकृत तथा प्रभावशून्य बना दे।

श्रीमान्, खण्ड (2) में विश्वविख्यात अधिकार, वन्द्युपस्थापन लेख आदि के अधिकार, दिये गये है। मेरे विचार में सब सहमत होंगे कि यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा अतीत अभीष्ट है। अतः मेरा ख्याल है कि विद्यमान रुप में ही इस अनुच्छेद को स्वीकार किया जा सकता है, यद्यपि, मेरे विचार में, बाद के वर्षों में खण्ड (3) को, यदि वह मूल सिद्धान्तों के विरुद्ध हो तो, हटा दिया जा सकता है। जब हमारा राज्य स्थिर हो जाये, तब खण्ड (4) को भी हटाया जा सकता है। मेरे विचार में कुछ समय पश्चात् इस अनुच्छेद का वही रूप उपयुक्त होगा जब कि हमारा जनतंत्र स्थिर हो जाये।

जब हम इस अनुच्छेद पर इस अध्याय के प्रभावी भाग के रूप में विचार करते हैं तो हमने अब तक जो कुछ किया है, हम उस पर सिंहावलोकन कर सकते हैं। वास्तव में यह मूलाधिकारों का अध्याय है। हमने सब प्रकार के भेदभावों के विरुद्ध प्रत्याभूति दी है, हमने यह भी प्रत्याभूति दी है कि अस्पृश्यता का अन्त कर दिया जायेगा; अब तक परिषद् ने जितने कार्य किये हैं, यह उनमें सबसे ऐतिहासिक कार्य है; हमने अनुच्छेद 13 में स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र स्वीकार किया है। मुझे आशा है कि हम अनुच्छेद 15 को भी पारित कर देंगे जिसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा कानून के समक्ष स्वतन्त्रता की प्रतिभूति दी गई है। तत्पश्चात्, हमने अल्पसंख्यकों के लिए सांस्कृतिक तथा धार्मिक दोनों प्रकार के अभिरक्षण रखे हैं। सम्पत्ति विषयक अधिकार अभी अन्तिमरूपेण स्वीकृत होना है। मेरे विचार में ये सब अधिकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, किसी नागरिक के लिये यह अत्यन्त मूल्यवान अधिकार हैं। मैं अपने मित्रों से, जोकि कल यह समझते थे कि वे प्रावधान अल्पसंख्यकों के अधिकारों के लिये पर्याप्त अभिरक्षण नहीं हैं, कहता हूं कि अल्पसंख्यकों का अन्तिम अधिकार बहुसंख्यकों की सद्भावना है। व्यक्तिगत रूप में मेरा ख्याल है कि बहुसंख्यक इस विषय में चिर सीमा तक पहुंच गये हैं। मैं एक बात और भी बता दूं कि मूलाधिकार-समिति विभाजन से पूर्व बनी थी। वास्तव में विभाजन से पूर्व ही इस रूप में इन अधिकारों को तैयार

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

किया गया था। अल्पसंख्यकों के अधिकार इस आधार पर रखे गये थे कि विभाजन नहीं होगा। फिर भी हमने उनमें कोई परिवर्तन नहीं किया है। मैं एक गुप्त भेद नहीं बता रहा हूं जब कि मैं कहता हूं कि हमारे महान् नेता सरदार पटेल ने हमें कहा था—"कृपया इन धार्मिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों में हस्तक्षेप मत करिये, क्योंकि वे विभाजन से पूर्व के एक समझौते का भाग हैं।" यदि कोई कहता है कि यह अधिकार अपर्याप्त हैं तो यह कृतघ्नता की पराकाष्ठा है। मेरे विचार में हमने ऐसे अधिकार प्रत्याभूत किये हैं, जिनके लिये सम्भवतः हमारे लोग भविष्य में कहेंगे कि हमने इन अधिकारों के विषय में सौदा किया है। हमने अभी घोषणा की है कि शिक्षालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी। हमारे 30 करोड़ लोग हिन्दू हैं, किन्तु उन्हें शिक्षालयों में विश्व-मान्य धार्मिक पुस्तक गीता के भी पढ़ने का अधिकार नहीं होगा। हमने ऐसा क्यों किया है? क्योंकि उस समय विभाजन से पहले यह सोचा गया कि यहां विभिन्न धर्म होने के कारण धर्म शिक्षा नहीं होनी चाहिये। अब जबकि 33 करोड़ में से केवल तीन करोड़ ही अल्पसंख्यक हैं, तब भी बहुसंख्यक अपने बच्चों को अपनी जाति के धार्मिक सिद्धान्त पढ़ाने के अवसर का परित्याग कर रहे हैं। फिर भी हमने इन अधिकारों को नहीं बदला है क्योंकि हमारे नेता ने इनमें हस्तक्षेप करने के लिये हमें मनाही कर दी है। मेरे विचार में बहुसंख्यकों ने अल्पसंख्यकों को कितना आश्रय देने का प्रयत्न किया है, इस बात का ध्यान रखा जायेगा और यह ठीक नहीं होगा कि कोई आगे बढ़ कर जोर-जोर से बहुसंख्यकों को गालियां दे कि उन्होंने पर्याप्त अभिरक्षण नहीं रखे हैं। मेरे विचार में अल्पसंख्यकों की असली प्रत्याभूति बहुसंख्यकों की सद्भावना हैं। मुझे आशा है कि इन मूलाधिकारों के आधार पर हम इस देश में ऐसा राज्य स्थापित कर सकेंगे जो कि हमारे महान् नेता राष्ट्रपिता के आदर्शों पर आधारित होगा तथा उनसे प्रेरणा प्राप्त करेगा, जिससे कि हम इस देश में सचमुच एक लौकिक राज्य बना सकेंगे, ऐसा राज्य जो महात्मा गांधी के आदर्शों पर आधारित हो।

श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***प्रोफेसर एन.जी. रंगा** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं उन मित्रों की युक्तियों को समझने में असमर्थ हूं जो कि खण्ड (4) को हटवाना चाहते हैं और जो सद्यस्कृत्यस्थिति में अनुच्छेद 280 के अधीन इन मूलाधिकारों को निलम्बित करने की शक्ति गणराज्य के प्रधान को नहीं देना चाहते। श्रीमान्, अनेक वक्ताओं ने कहा है कि यह अनुच्छेद हमारे देश में वैयक्तिक स्वतन्त्रता की

महान्तम प्रत्याभूति है और जो सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया जा रहा है वह हमारे लोगों की आज़ादी का सबसे बड़ा समर्थक होगा। किन्तु क्या उन लोगों ने इस बात पर विचार किया है कि जैसे व्यक्तियों तथा वर्गों के अधिकार होते हैं उसी प्रकार सामूहिक रूप से समाज को भी, उन लोगों तथा वर्गों के विरुद्ध जो कि हिंसात्मक उपायों से उस समाज को नष्ट करने तथा सामाजिक व्यवस्था को बिगाड़ने तथा सामाजिक संगठन को खण्डित करने पर तुले हुये हैं, कुछ अधिकार होते हैं? श्रीमान्, क्या यह सत्य नहीं है कि इस शताब्दि की हाल की दशाब्दियों में भिन्न-भिन्न देशों में संगठित वर्गों ने और अल्पसंख्यकों ने सामाजिक व्यवस्था को बिगाड़ने के तथा बहुसंख्यक जनता के ही सामाजिक जीवन को नष्ट करने के ऐसे ही प्रयत्न किये हैं? तब फिर विभिन्न देशों में बहुसंख्यक जनता की सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक अधिकारों के बने रहने की ही क्या प्रत्याभूति है, यदि थोड़े से अल्पसंख्यक संगठित रूप से हिंसात्मक प्रयास करें? इस संविधान में और इस अनुच्छेद में ऐसे समाज के अभिरक्षण के लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया है। यह कहा जा सकता है कि राज्य के लिये संरक्षण की व्यवस्था की गई है; किन्तु क्या यह सत्य नहीं है कि जर्मनी और इटली में हिंसात्मक कार्यों के निमित्त संघटित लोगों का एक गिरोह राज्य पर अधिकार करने में समर्थ हो गया था और उसने बाद में सारे समाज को ध्वंस कर दिया और बहुसंख्यक लोगों के मूलाधिकारों को नष्ट कर दिया? क्या यह सत्य नहीं है कि सोवियत रूस में आज भी संगठित अल्पसंख्यक-वर्ग ही अधिकारारूढ़ है और राज्य पर अधिकार किये हुये है, और वहां समस्त बहुसंख्यक लोगों को ही नहीं बल्कि उन व्यक्तियों को भी इन मूलाधिकारों से वंचित करने में समर्थ है जिनकी कि आपने अपने विधान में व्यवस्था कर रखी है। अतएव, श्रीमान्, हमारे लिये इस गम्भीर आवश्यकता को ध्यान में रखना उचित होगा कि समाज को भी उन संगठित अल्पसंख्यकों द्वारा की जाने वाली हिंसा के विरुद्ध अपना बचाव करना है जो कि हिंसा के प्रयोग पर तुले हुये हैं तथा हिंसा का प्रयोग करना चाहते हैं। मेरे मित्र श्री पोकर ने मद्रास की घटनाओं से एक प्रकार का हौवा बनाने का प्रयत्न किया है। ऐसी ही बातें अन्य प्रान्तों में भी आसानी से हो सकती थीं। क्या, श्रीमान्, हम इस बात से इन्कार कर सकते हैं या कोई और इन्कार कर सकता है कि उस समय मद्रास प्रदेश में ऐसे लोग थे, जिन्होंने कि दक्षिण में हमारे अपने ही समाज का ध्वंस करने के लिये सारे हिंसात्मक साधनों का प्रयोग करना अपना काम बना लिया था, जिससे कि वे ऐसे लोगों के एक गिरोह की सहायता कर सकें जो कि भारत तथा राज्य के शत्रु बन गये थे, भारतीय राज्य के भी और प्रान्तीय राज्यों के भी? श्रीमान्, मद्रास सरकार ने इन लोगों को पकड़ लिया, अस्थायी समय के

[प्रो. एन.जी. रंगा]

लिये उनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगा दिया, जिससे कि वे रज़ाकारों की सहायता न कर सकें और रज़ाकारों ने हमारे देश के एक भाग विशेष में जो हिंसात्मक उपाय तथा तरीके अपनाये थे, उनमें सहयोग न दे सकें। इसके अतिरिक्त मद्रास सरकार कर भी क्या सकती थी? यह मित्र इस बात से इंकार नहीं कर सकते कि इन मित्रों में बहुत से लोगों का, जिनकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाना पड़ा था, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपेण उन व्यक्तियों से गठबन्धन था, जो कि रज़ाकार संगठन से सम्बन्धित थे; और ऐसी परिस्थिति में किसी भी समाज के लिये अपनी रक्षा करने का और क्या उपाय था, सिवाय इसके कि वह इन मित्रों से कहता कि उन्हें सीमा में रहना चाहिये और यदि वे स्वयं ऐसा नहीं कर सकते हैं तो यह समाज का, राज्य का कर्त्तव्य होगा कि कुछ समय के लिये इन लोगों की स्वतन्त्रता को सीमित कर दे।

श्रीमान्, दूसरी बात यह है कि हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि आज दो विचार—धाराओं के बीच विश्वव्यापी संघर्ष चल रहा है। एक ओर सर्वतन्त्रवाद है और दूसरी ओर जनतंत्रवाद है। इस संघर्ष में हमें निर्णय करना है कि हमें क्या करना चाहिये। वही समाज और वे ही व्यक्ति इन मूलाधिकारों की रक्षा कर सकते हैं, जो कानून का उचित सम्मान करते हों, जो अपने साथ-साथ दूसरे लोगों के मूलाधिकारों का उचित सम्मान करते हों, और इस कारण जो उत्तरदायित्व तथा संयम की उचित भावना से आचरण करने के लिये उद्यत हों। जहां भी ऐसी स्थितियां नहीं हैं और जहां भी ऐसे वर्ग और दल हैं जो कि संगठन करके राज्य को नष्ट करना तथा उस पर अधिकार करना अपना काम बना लेते है, वहां निस्संदेह किसी राज्य अथवा समाज के लिये सम्भव नहीं होगा कि वह इन मूलाधिकारों का सम्मान करे। इन मूलाधिकारों की पूर्ति के लिये यह प्रथम आवश्यकता है। श्रीमान्, यह एक सुविख्यात तथ्य है कि इन मूलाधिकारों की कल्पना उन कठोर विपत्तियों से उत्पन्न हुई है जो कि लोगों को समस्त संसार के विभिन्न देशों में गत दो शताब्दियों में सहनी पड़ी हैं। यह सब पवित्र अधिकार हैं, ऐसे अधिकार हैं जो विभिन्न देशों के लोगों के अनुभव के आधार पर रखे गये हैं। यह सब ठीक है, किन्तु इन अधिकारों को क्यों स्वीकार किया जा रहा है और क्यों मांगा जा रहा है? क्योंकि व्यक्ति का व्यक्तित्व अखण्ड है। व्यक्ति ऐसा ही अखण्ड है जैसा कि समाज होता है। समाज को तथा राज्य को हर कीमत पर प्रत्येक सम्भावित उपाय से व्यक्ति की स्वतंत्रता का अभिरक्षण करना है। यदि उस समाज का जीवन ही जोखिम में पड़ जाये, तो...

***मौलाना हसरत मोहानी** (संयुक्त प्रान्त : मुस्लिम): हड़ताल करने के अधिकार के विषय में क्या है?

***उपाध्यक्षः** मौलाना साहब, कृपया हस्तक्षेप मत करिये।

***प्रोफेसर एन.जी. रंगाः** हड़तालों के विषय में स्वयं महात्मा गांधी ने पहले ही इसका उत्तर दे दिया है। किसी के लिये भी हड़ताल करना सम्भव है, अथवा लोगों के वर्गों द्वारा हड़ताल करना सम्भव है, पर शर्त यह है कि वे अंहिसात्मक रहें। ज्यों ही वे अहिंसा की सीमा को पार करें और दूसरों के विरुद्ध, जोकि हड़तालों के विषय में उनकी कार्य-प्रणाली में विश्वास नहीं करते, हिंसा का प्रयोग करें, चाहे उन्हें आप हड़ताल कहें चाहे काम बन्द करना कहें, उन पर रोक लगा देनी पड़ेगी और इन हड़तालों में भाग लेने वाले लोगों के साथ केवल वैसा ही व्यवहार करना होगा, जैसा कि समाज अपने अभिरक्षण के लिये सम्भवतः कर सकता है। श्रीमान्, हमें याद रखना चाहिये कि व्यक्ति आकाश में नहीं रह सकता है, उसे समाज में ही रहना है। अतः किसी व्यक्ति द्वारा मूलाधिकारों की पूर्ति के लिये सर्वप्रथम शर्त समाज का अस्तित्व है, जिसके लिये मूल बात, जिसकी शक्ति का आधार उसका अपना संगठन है। अतः जो व्यक्ति सामाजिक जीवन में विश्वास नहीं करते, जो समाज-विरोधी हैं, जो समाज को नष्ट-भ्रष्ट करने पर ही तुले हुये हैं, उन्हें इन मूलाधिकारों की प्राप्ति तथा उपभोग की आशा नहीं करनी चाहिये। यह एक अत्यन्त उचित शर्त है जो प्रत्येक व्यक्ति को पूरी करनी होती है।

दूसरी बात यह है कि किसी व्यक्ति अथवा वर्ग के मूलाधिकारों की पूर्ति सर्वोच्च न्यायालय भी उतनी नहीं कर सकता, जितनी कि उन मूलाधिकारों की रक्षा करने तथा आवश्यक त्याग करने की उस व्यक्ति अथवा वर्ग की क्षमता कर सकती है। वह दो प्रकार से उनकी रक्षा कर सकता है। एक पाश्चात्य जगत् की प्रणाली है जिसमें हिंसा का आश्रय लेना पड़ता हैं। दूसरा महात्मा गांधी का मार्ग है, यानी सत्याग्रह का। कोई सत्याग्रही अपने विचारों को व्यक्त करने में, अपनी कार्यवाहियों में, दूसरों को भड़काने में, और समाज को पलटने के लिये वह और जो विभिन्न उपाय प्रयोग करता है उनमें, एक ही समय अहिंसात्मक तथा हिंसात्मक दोनों नहीं हो सकता। सत्याग्रही को एक विशेष प्रकार का व्यक्ति बनना पड़ता है, वह अन्य व्यक्तियों से उसी मात्रा में भिन्न होता है जिस मात्रा में कि वह संयमपूर्वक कार्य कर सकता है तथा अपने शिष्यों से भी कह सकता है कि वे संयम रखें और मनसा, वाचा, कर्मणा अहिंसा का पालन करें। ऐसा सत्याग्रही तो सदा ही अपने मूलाधिकारों की रक्षा कर सकता है। किन्तु यह सोच कर कि प्रत्येक मनुष्य सत्याग्रही नहीं बन सकता और साधारण लोगों का अभिरक्षण करना अपेक्षित है, यह मूलाधिकार इस अध्याय में रखे जा रहे हैं। अतः जो इन

[प्रो. एन.जी. रंगा]

मूलाधिकारों का उपभोग करना चाहते हैं, और अपने उपभोग का अभिरक्षण करना चाहते हैं, उन्हें समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का विशेषतः पालन करना होगा। ऐसे वर्ग हो सकते हैं और इस देश में हैं भी, ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं और वे इस देश से पर्याप्त संख्या में हैं जोकि समाज के प्रति अपने कर्त्तव्यों में विश्वास नहीं करते, किन्तु जो इन मूलाधिकारों से यथासम्भव अधिकाधिक लाभ उठाना चाहते हैं। श्रीमान्, हम जानते हैं कि कुछ ऐसे इश्तिहारबाज़ हैं, हम जानते हैं कि कुछ ऐसी संस्थायें हैं, हम यह भी जानते हैं कि कुछ ऐसे साम्प्रदायिक समर्थक हैं जो इन स्वतन्त्रताओं से अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं ऐसी अवस्था में समाज को क्या करना होगा? यदि वे केवल उपेक्षणीय महत्त्व के हैं तो उन्हें रोकना साधारण कानून का कार्य है। किन्तु दूसरी ओर यदि वे अत्यन्त शक्तिशाली और वाचाल हो जायें तो उन्हें राज्य को ही ठीक करना होगा, और यदि वे प्रान्तव्यापी अथवा देशव्यापी हो जाते हैं तो गणतन्त्र के प्रधान का कर्त्तव्य होगा कि अनुच्छेद 280 का प्रयोग करे तथा सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित कर दे और मूलाधिकारों को निलम्बित कर दे और इन सज्जनों के साथ यथायोग्य बर्ताव करे।

***श्री एच.वी. कामतः** क्या मेरे माननीय मित्र प्रोफेसर रंगा वाचाल अल्पसंख्यकों के साथ भी ऐसा बर्ताव करना चाहते हैं?

***प्रोफेसर एन.जी. रंगाः** हां, किन्तु केवल उन्हीं लोगों के साथ, जोकि बिना किसी जिम्मेवारी की भावना के, बिना किसी संयम के और बिना किसी सदाचार की भावना के दूसरों को गालियां देने में वाचाल हैं, और हम जानते हैं कि हमारे यहां ऐसे पर्याप्त लोग थे जिनके कारण काफी उपद्रव हुये और...

***उपाध्यक्षः** आप जो उत्तर दे चुके हैं वह काफी है।

***प्रोफेसर एन.जी. रंगाः** धन्यवाद, श्रीमान्! तो फिर, श्रीमान्, यह सच है कि बहुसंख्यक भी पागल बन सकते हैं, और इस कारण लोगों को उनके अन्याय से बचाना होता है। बहुसंख्यक संगठित ढंग से भी और बिना संगठित हुए भी पागल बन सकते हैं। यदि वे बिना संगठित तरीके के, बिना राज्य के अथवा समाज के अथवा किसी के नेतृत्व के ही पागल बन जाते हैं तो राज्य का यह कर्त्तव्य है कि बीच में पड़कर इन लोगों को यथासम्भव ठीक करे, चाहे उससे राज्य का अस्तित्व ही जोखिम में क्यों न पड़ जाये। जो राज्य अपने संगठित अथवा

असंगठित बहुसंख्यकों को, विभिन्न लोगों को, चाहे फिर यह लोग संगठित हों अथवा असंगठित, मनमाने ढंग से दण्ड देने से नहीं रोक सकता, उस राज्य को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है। किन्तु दूसरी ओर, यदि बहुसंख्यक संगठित हों तथा वे राज्य के ही द्वारा प्रकार्य करना आरम्भ करते हों तो इन मूलाधिकारों को कौन प्रत्याभूत करेगा और कौन इनकी रक्षा करेगा? यह कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय से ऐसा करने की प्रत्याशा की जायेगी। यह भी सर्वथा सम्भव है कि जब कोई संगठित अल्पसंख्यक राज्य के द्वारा प्रकार्य कर रहे हों और इस प्रकार दुर्व्यवहार करना आरम्भ कर दें तो सर्वोच्च न्यायालय व्यर्थ हो सकता है जैसा कि नात्सी जर्मनी और फैसिस्ट इटली में हुआ था। तब इन व्यक्तियों अथवा वर्गों के लिये क्या प्रत्याभूति है? प्रोफेसर लास्की की एक पुस्तक है जिसका नाम है 'आधुनिक राज्य में स्वातन्त्र्य' जिसमें...

*__श्री कृष्णचन्द्र शर्मा__ (संयुक्तप्रान्त : जनरल): किन्तु इसमें युक्ति क्या है? इस समय आप जो कुछ कह रहे हैं, उसका इस बात से क्या सम्बन्ध है, जिस पर वाद-विवाद हो रहा है?

*__प्रोफेसर एन.जी. रंगा:__ वहां उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया है कि....

*__उपाध्यक्ष:__ श्री शर्मा यह जानना चाहते हैं कि इस समय आप जो कुछ कह रहे हैं वह किस हद तक विवादाधीन अनुच्छेद से सम्बन्धित है।

*__श्री एच.वी. कामत:__ श्रीमान्, यह तो आपको निश्चय करना है।

*__उपाध्यक्ष:__ किन्तु मैं प्रोफेसर रंगा की बात सुनना चाहता हूं, मेरे विचार में कुछ सम्बन्ध अवश्य है चाहे कितना ही कम हो।

*__प्रोफेसर एन.जी. रंगा:__ सर्वोच्च न्यायालय से आशा की जाती है कि वह वन्द्युपस्थापन, परमादेश और अन्य प्रकार के लेख निकाले। यदि कोई संगठित दल हो जो सर्वोच्च न्यायालय के इन लेखों को मानने से इन्कार कर दे तो इन मूलाधिकारों की क्या प्रत्याभूति है? यह सम्बन्ध है। मेरा उत्तर है कि ऐसी अवस्था में प्रत्येक वर्ग का कर्त्तव्य सत्याग्रह करना है, पर शर्त यह है कि सत्याग्रह गांधीजी की पद्धति से, अहिंसात्मक प्रणाली से और आत्मत्याग की प्रणाली से चलाया जाये तथा किया जाये। इन शर्तों के अनुसार सत्याग्रह किया जा सकता है। यही शस्त्र है जो कि महात्मा गांधी ने इस देश के लिये तैयार किया था।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, क्या सत्याग्रह करने का अधिकार भी मूलाधिकार है?

***प्रोफेसर एन.जी. रंगाः** श्रीमान्, मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि यह आप के सारे मूलाधिकारों का आधार है। किन्तु सत्याग्रह को किसी संविधान में सन्निहित करने की आवश्यकता नहीं है। यह तो लोगों की त्याग करने की तथा स्वयं भी बलिदान हो जाने की क्षमता में ही सन्निहित होता है। संसार में इन मूलाधिकारों की कल्पना इसी कारण उत्पन्न हुई कि संसार के इतिहास में ऐसे लोग थे जो कि स्वयं-बलिदान होने के लिये उद्यत थे जिससे कि यह मूलाधिकार स्थापित हो सकें, जिससे कि समस्त सभ्य संसार में और सारे जनतंत्रात्मक जगत् में इस कल्पना को मूलाधिकारों के रूप में स्वीकार कर लिया जाये।

अन्त में, श्रीमान्, मैं एक चेतावनी भी देना चाहता हूं। हमें स्मरण रखना चाहिये कि हम इन अधिकारों का प्रयोग जनतंत्र की परिधि में ही कर सकते हैं, और जब भी जनतंत्र की भावना को ही गम्भीर जोखिम हो, जनतंत्र के प्रकार्यों की पूर्ति में तथा जनतंत्र की संस्थाओं को ही भय हो, तब राज्य का तथा हमारे गणराज्य के प्रधान का यह कर्त्तव्य होगा कि वह लोगों की रक्षार्थ इन मूलाधिकारों को ताक में रख दें। हां, हमारे मित्र, जिनका दावा है कि वे किसी प्रकार के अल्पसंख्यक हैं, इससे घबरा रहे हैं। किन्तु मैं उन्हें इस प्रकार की चेतावनी देना चाहता हूं। हो सकता है कि उनका धर्म सर्वाधिकारों की प्राप्ति की ओर उन्मुख हो, हो सकता है कि उनका मत सर्वाधिकारों की प्राप्ति का हो, किन्तु इस देश में सर्वाधिकारवाद के लिये कोई स्थान नहीं है; और यदि कभी कोई वर्ग अथवा व्यक्ति इस देश में सर्वाधिकारवाद की स्थापना करना चाहे, विशेषतः सर्वाधिकारी राज्य की स्थापना करना चाहे तो सर्वोच्च न्यायालय का तथा इस देश के गणराज्य के प्रधान का यह पवित्र कर्त्तव्य होगा कि वह देखे कि हर स्थिति में संविधान बना रहता है तथा उन लोगों अथवा वर्गों को इन मूलाधिकारों का ऐसा प्रयोग नहीं करने दिया जाता है जिससे कि हमारे समाज की हानि हो।

***उपाध्यक्षः** श्री रोहिणी कुमार चौधरी! आप कृपया संक्षेप में बोलें।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, यह प्रथम अवसर है कि मैं इन पुस्तकों को अपनी मेज पर लाया हूं, और मेरे इन पुस्तकों को लाने के कारण परिषद् को भयभीत नहीं होना चाहिये, कि मैं अनावश्यक ही लम्बी अथवा अप्रसंगानुकूल वक्तृता दूंगा। श्रीमान्, मैं आपको एक

बार और बताना चाहता हूं कि जहां तक घण्टी की ध्वनि का सम्बन्ध है मुझे कुछ कम सुनाई देता है, किन्तु जब कानाफूसी के द्वारा दोषारोपण किया जाता है, तो उसे मैं सर्वथा ठीक सुन सकता हूं।

*__उपाध्यक्ष:__ अच्छा होता यदि यह बात मुझे पहले विदित होती, तो मैं आपको ध्वनि-यन्त्र पर ज़रा सोच समझ कर बुलाता।

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ श्रीमान्, मैं इस अनुच्छेद का स्वागत करता हूं क्योंकि यदि इस अनुच्छेद द्वारा हमें सर्वोच्च न्यायालय से न्याय प्राप्त करने का अधिकार नहीं दिया जाता, तो इन मूलाधिकारों का उल्लेख व्यर्थ होता। मि. नज़ीरुद्दीन अपना संशोधन पेश करते समय क्यों शर्मीले से थे, यह मैं खूब समझता हूं। जो मनुष्य सदा मसौदे की भाषा सम्बन्धी साधारण त्रुटियों को ही ढूंढता रहता था, अन्ततोगत्वा वही भाषा-सम्बन्धी भूल करते हुये पकड़ा गया। उनकी गलती का सबको पता लग गया, और उन्होंने इसे मान भी लिया कि उनका सारा संशोधन स्पष्ट नहीं हैं। किन्तु मैं निवेदन करूंगा कि वे जो अर्थ चाहते थे वह अनुच्छेद द्वारा ही व्यक्त हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय में जाने का अधिकार होगा, जब भी वह यह देखें कि किसी मूलाधिकार का उल्लंघन हुआ है। फर्ज़ किया, हम यह कहना चाहते हैं कि क्वीन्सवे यातायात के लिये खुला है तो इसके लिये किसी को यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य को क्वीन्सवे में से होकर जाने का अधिकार है। इसी प्रकार यह अनुच्छेद अपने वर्तमान रूप में ही पूर्णत: स्पष्ट है, और मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

मैं इस प्रावधान का भी स्वागत करता हूं, जो कि यहां रखा गया है, कि कुछ अवस्थाओं में सर्वोच्च न्यायालय अपनी शक्तियां कुछ अन्य न्यायालयों को दे सकता है। यह आसाम और कुर्ग जैसे दूरस्थ स्थानों के लिये विशेषत: एक अच्छी बात होगी, क्योंकि ऐसी दूर वाली जगहों के लोगों के लिये सर्वोच्च न्यायालय में आकर न्याय मांगना अत्यन्त कठिन होगा, क्योंकि सर्वोच्च न्यायालय अवश्य ही युक्तप्रान्त अथवा दिल्ली में कहीं स्थित होगा। किन्तु साथ ही मैं यहां यह कहना चाहता हूं कि इस प्रकार शक्ति प्रदान करने के अधिकार का बहुत ही कम प्रयोग होना चाहिये, क्योंकि आखिर सर्वोच्च न्यायालय के व्यक्ति उच्च न्यायालय के व्यक्तियों से निस्संदेह अधिक योग्य होंगे। अत: किन्तु प्रान्त के लिये सर्वोच्च

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

न्यायालय में आने की सम्भावना को हटा देना तथा उच्च न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार दे देना कुछ-कुछ परस्पर विरोधी बात होगी।

अब मैं अनुच्छेद 25 के चतुर्थ खण्ड को लेता हूं। मैं चाहता था कि मैं अपने माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर से पहले बोल लेता, क्योंकि मुझे इस खण्ड के विषय में जो कठिनाइयां मालूम होतीं वे उनमें से कुछ को समझा देते। इसके अतिरिक्त मैं और परिषद् के अधिकांश सदस्य हमारे माननीय मित्र श्री अनन्तशयनम् आयंगर को प्राचीन गुरु द्रोणाचार्य के समान समझते हैं जो अपने व्यक्तिगत विचारों अथवा अनुभवों की चिंता न करते हुये मसौदे के लेखकों के मन्तव्यानुसार इन प्रावधानों का उचित अर्थ समझा सकते हैं। मैं गलती पर हो सकता हूं किन्तु मेरा विचार है कि खण्ड (4) नहीं रखना चाहिये था, अथवा इस खण्ड में मूल परिवर्तन होने चाहियें। मूलाधिकार तो स्वभावतः ही ऐसे अधिकार हैं जिन्हें लोगों से कभी नहीं छीनना चाहिये। इस खण्ड के अनुसार इन अधिकारों को सद्यस्कृत्यस्थिति में छीना जा सकता हैं। अनुच्छेद 280 में लिखा है कि सद्यस्कृत्यस्थिति में प्रधान समूचे अनुच्छेद 25 को निलम्बित रख सकता है। हमें यह देखना चाहिये कि इस निलम्बन का क्या परिणाम होगा, इसका क्या बुरा प्रभाव होगा और क्या सम्भावित अच्छा परिणाम हो सकता है। इस निलम्बन का बुरा परिणाम यह होगा कि सद्यस्कृत्यस्थिति में आप अनुच्छेद 11 की उपेक्षा कर सकते हैं जो कि अस्पृश्यता के विषय में है। इसका यह अर्थ हुआ कि ऐसी बहुत-सी परिस्थितियों की कल्पना की जा सकती है जब कि राज्य अथवा कोई व्यक्ति अनुच्छेद 11 का उल्लंघन कर सकता है और दण्ड से बच सकता है। सद्यस्कृत्यस्थिति में कोई राज्य, कोई मन्दिर अथवा कोई प्राधिकारी अनुच्छेद 11 के विपरीत आचरण कर सकता है। क्या यह परिषद् इस विचार का समर्थन करती है? क्या परिषद् किसी भी अवस्था में अनुच्छेद 25 के सम्बन्ध में विधान के निलम्बन के लिये तैयार है और जो लोग इसके विरुद्ध आचरण करें, उन्हें बिना दण्ड दिये छोड़ने के लिये तैयार है?

अब हम अनुच्छेद 17 को लेते हैं जिसमें मानव-पणन का वर्जन किया गया है। क्या परिषद् इस बात से सहमत है कि विधान के निलम्बन का यह प्रभाव होना चाहिये कि लोग दण्ड से अभय होकर मानव-पणन कर सकें? मैं कहता हूं कि ऐसी स्थिति वास्तव में उत्पन्न हो सकती है। गत युद्ध को याद रखिये, जब कि युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वास्तव में मानव-पणन

किया गया था। आखिर महिला सेविकायें (Women's Volunteer Service) क्या थीं? डब्ल्यू.ए.सी. क्या थी? सबको पता है कि किस लिये महिला सहायक-सेना का संगठन किया गया था और वे क्या प्रकार्य करती थीं। वहां मानव-पणन वास्तव में होता था और युद्ध में भिन्न-भिन्न नगरों में होता था, जहां कि सेनाओं का साहस बनाये रखने के लिये महिलाओं को नृत्य तथा अन्य कार्यों के लिये वास्तव में रखा गया था। क्या अनुच्छेद 25 का निलम्बन करके आप सद्यस्कृत्यस्थिति में, जिसकी कि युद्धकाल में अधिक चर्चा होती है, इस प्रकार के मानव-पणन की सम्भावना की ओर उन्मुख हैं? अतएव मैं चाहता हूं कि इस अन्तिम खण्ड को—इस अनुच्छेद के चौथे खण्ड को—या तो हटा देना चाहिये या इसमें ऐसा संशोधन कर देना चाहिये कि किसी भी समय पूरे अनुच्छेद का स्थगन करना सम्भव न हो, किन्तु इसे कुछ अत्यन्त अनिवार्य परिस्थितियों में स्थगित किया जा सके। किन्तु वास्तव में मुझे ऐसी कोई भी परिस्थिति ही दिखाई नहीं देती जब कि आपके लिये इस अनुच्छेद को किसी प्रकार स्थगित करना आवश्यक हो जाये। सद्यस्कृत्यस्थिति में आप केवल अनुच्छेद 13 को ही स्थगित करना चाहेंगे जिसमें कि वक्तृता की स्वतन्त्रता, समागम की स्वतन्त्रता और इन सब बातों की चर्चा है। सद्यस्कृत्यस्थिति में अथवा जब वास्तव में युद्ध हो रहा हो, तब वक्तृता की स्वतन्त्रता, और समागम की स्वतन्त्रता और उस अनुच्छेद में उल्लिखित अन्य अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक हो सकता है। किन्तु उस अनुच्छेद के भी प्रत्येक भाग में ऐसे प्रावधान हैं जो राज्य को इन अधिकारों को कम करने की शक्ति देते हैं। जहां तक कि उस अनुच्छेद का सम्बन्ध है, उसमें स्वयं ही ऐसी सीमाओं और प्रतिबन्धों का उल्लेख है, जो कि सद्यस्कृत्यस्थिति में अत्यन्त आवश्यक होते हैं। उस प्रयोजन से तो अनुच्छेद 25 को निलम्बित करना आवश्यक नहीं है। अतएव मेरी तुच्छ सम्मति के अनुसार तो मैं यही निवेदन करना चाहता हूं कि सब दृष्टिकोणों से इस खण्ड (4) को हटा देना अथवा इसमें समुचित संशोधन करना ही अच्छा होगा, किन्तु मेरे माननीय मित्र डॉ. अम्बेडकर अथवा परिषद् के कोई और सदस्य जो व्याख्या करें, उससे मेरा विचार बदल भी सकता है।

*__पण्डित लक्ष्मीकान्त मैत्र__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): क्या आपका यह सुझाव है कि अनुच्छेद 280 को हटा देना चाहिये?

*__श्री रोहिणी कुमार चौधरी:__ मैं अपनी वक्तृता में अनुच्छेद 280 की चर्चा कर रहा था।

***उपाध्यक्षः** आपको इसका उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** उपाध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद पर जितने संशोधन रखे गये हैं, उनमें से मैं केवल संशोधन संख्या 789 को स्वीकार करता हूं कि मि. बेग के नाम से था किन्तु वास्तव में मि. नज़ीरुद्दीन अहमद द्वारा पेश किया गया था। मैं इसे इस कारण स्वीकार करता हूं कि इससे मसौदे की भाषा में निस्संदेह सुधार हो जाता है। अन्य संशोधनों में से मैं सर्वप्रथम मि. तजम्मुल हुसैन के संशोधन (संख्या 801) तथा मि. करीमुद्दीन के संशोधन (संख्या 802) को लेता हूं। दोनों एक से ही प्रकार के हैं। मि. तजम्मुल हुसैन द्वारा प्रस्तुत संशोधन का उद्देश्य इस अनुच्छेद के उपखण्ड (4) को बिल्कुल ही निकाल देना है और मि. करीमुद्दीन का संशोधन है कि उपखण्ड (4) में 'विद्रोह अथवा आक्रमण की अवस्था में' इन शब्दों को प्रविष्ट करके उसकी भाषा को सीमित कर दिया जाये।

अब, श्रीमान्, यह जो तर्क दिया गया है कि खण्ड (4) को हटा देना चाहिये, इसके विषय में, मुझे भय है, यदि मैं बिना किसी को बुरा लगे ऐसा कह सकूं तो यह बहुत बड़ी मांग है, बहुत बड़ी आज्ञा है। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि ऐसे कुछ मूलाधिकार हैं जिनकी राज्य को व्यक्ति के लिये प्रत्याभूति देनी चाहिये, जिससे कि व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास की कुछ सुरक्षा और स्वतन्त्रता हो, किन्तु यह भी समान रूप से स्पष्ट है कि कुछ अवस्थाओं में, जहां कि उदाहरणार्थ, राज्य का जीवन ही जोखिम में हो, उन अधिकारों पर कुछ न कुछ प्रतिबन्ध होना चाहिये। साधारण, शान्तिपूर्ण समय सद्यस्कृत्यस्थिति से सर्वथा भिन्न होते हैं। सद्यस्कृत्यस्थिति के समय में राज्य का जीवन ही जोखिम में होता है और यदि राज्य उस समय अपनी रक्षा करने में समर्थ न हो सके, तो स्वयं व्यक्ति अपने अस्तित्व को ही खो देगा। परिणामतः व्यक्ति के अधिकार के समान ही राज्य को भी सद्यस्कृत्यस्थिति में अपनी रक्षा करने का महान् अधिकार प्राप्त होना चाहिये और इसकी प्रत्याभूति देनी होगी, जिससे कि राज्य उस संकटकाल को पार कर जाये और अपने प्रकार्यों की पूर्ति करने के लिये जीवित रहे, जिससे कि राज्य की छत्रछाया में व्यक्ति का विकास हो सके। मैंने ऐसा कोई विधान नहीं देखा जो मूलाधिकार देता हो किन्तु ऐसे रूप में देता हो कि सद्यस्कृत्यस्थिति में व्यक्ति के अधिकारों को कम करके अपनी रक्षा करने का अधिकार राज्य को न देता हो। आप जो चाहें वही विधान ले लीजिये, जिसमें मूलाधिकारों की प्रत्याभूति दी गई हो; आप उसमें यह भी देखेंगे राज्य के लिये ऐसा प्रावधान रखा गया है कि वह

इनको सद्यस्कृत्यस्थिति में स्थगित कर सके। अतः जहां तक खण्ड (4) को हटा देने का सम्बन्ध है, यह एक सिद्धान्त का प्रश्न है और मुझे भय है कि मैं उस संशोधन के प्रस्तावक से सहमत नहीं हो सकता और मुझे उसका विरोध करना ही होगा।

अब, श्रीमान्, मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं। मेरे मित्र मि. तजम्मुल हुसैन ने मूलाधिकारों के अध्यय में समाविष्ट बहुत से अनुच्छेदों की चर्चा करके बहुत निराशाजनक चित्र खींचा था। उन्होंने कहा था कि देखो, पानी भरने का अधिकार है, दुकान में प्रवेश करने का अधिकार है, स्नानघाट पर जाने की स्वतन्त्रता है। यह सब बताते हुये उन्होंने यह सुझाव रखा था कि जब खण्ड (4) लागू होगा तब मूलाधिकारों में प्रत्याभूत समस्त साधारण मानवीय अधिकार भी समाप्त हो जायेंगे जिनमें कि किसी मनुष्य का कुएं पर जाकर पानी पीने, सड़क पर चलने, किसी चलचित्र अथवा नाटक में अबाधरूपेण जाने के अधिकार सम्मिलित हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे मित्र मि. तजम्मुल हुसैन के मन में यह विचार कैसे उत्पन्न हो गया। यदि वे अनुच्छेद 279 को देखें, जिसमें कि सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा करने के सम्बन्ध में प्रधान के अधिकार का प्रावधान है, तो उन्हें पता लगेगा। खण्ड (4) में इन अधिकारों के निलम्बन की जो चर्चा है वह केवल अनुच्छेद 13 के ही सम्बन्ध में है, अन्य किसी अनुच्छेद के विषय में नहीं है। प्रधान द्वारा सद्यस्कृत्यस्थिति की घोषणा होने पर केवल अनुच्छेद 13 में उल्लिखित अधिकारों का ही निलम्बन होगा; और अन्य समस्त अनुच्छेद तथा उनमें प्रत्याभूत अधिकार ज्यों के त्यों रहेंगे, उनमें से किसी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अतएव उन्होंने परिषद् में जो तर्क उपस्थित किये हैं वह अनुच्छेद 273 में सन्निहित प्रावधानों के बिल्कुल बाहर की चीज़ हैं।

*__श्री एच.वी. कामतः__ अनुच्छेद 280 के विषय में आप क्या कहते हैं?

*__माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः__ इसमें तो केवल इतना ही किया गया है कि उपचार का निलम्बन कर दिया गया है। मैं सोचता था कि मैं उस विषय में तब कुछ कहूंगा जब कि मैं इन उपचारों के व्यापक प्रश्न को लूंगा, अतः मैंने इसकी यहां चर्चा नहीं की थी।

अब मैं मि. करीमुद्दीन के तर्क को लेता हूं। वे ऐसा करना चाहते हैं कि खण्ड (4) केवल विद्रोह अथवा आक्रमण के विषय तक ही सीमित रहे। मेरे विचार में

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

यदि वे अनुच्छेद 275 को ध्यान से पढ़ते तो देखते कि अनुच्छेद 275 के प्रावधानों में और उनके सुझाये गये संशोधन में कोई वास्तविक अन्तर नहीं है। सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित करने की शक्ति, जो अनुच्छेद 275 द्वारा प्रधान में निहित की गई है, केवल उन अवस्थाओं तक ही सीमित है जब कि युद्ध अथवा आन्तरिक हिंसा हो।

***काज़ी सैयद करीमुद्दीनः** युद्ध की आशंका हो तब भी?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** निस्संदेह। सद्यस्कृत्यस्थिति केवल तभी उत्पन्न नहीं होती जबकि युद्ध आरम्भ हो चुका हो—जब युद्ध की आशंका हो तब भी स्थिति को सद्यस्कृत्यस्थिति माना जा सकता है। अतएव, यदि अनुच्छेद 275 की भाषा को मि. करीमुद्दीन के संशोधन से मिलाया जाये, तो वे देखेंगे कि अनुच्छेद 275 के अनुसार प्रधान को जो कुछ करने का अधिकार दिया गया है, उसमें और मि. करीमुद्दीन का संशोधन स्वीकृत हो जाने पर उन्हें जो कुछ करने का अधिकार होगा, उसमें क्रियात्मक रूप से कोई अन्तर नहीं है। अतः श्रीमान्, मेरा निवेदन है कि संशोधन 801 और 802 की कोई आवश्यकता नहीं है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, संशोधन 801 उस सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है जो कि मैंने बताया है।

मैं अपने मित्र श्री कामत के संशोधन संख्या 787 को, जिस रूप में वह सूची तीन के संख्या 34 के साथ पढ़ा जायेगा, लेता हूं और संख्या 43 द्वारा संशोधित रूप में संशोधन संख्या 783 को लेता हूं जो कि मेरे मित्र श्री सरवटे द्वारा पेश किया गया था। यदि मैं ठीक समझा हूं तो मेरे मित्र श्री कामत ने यह सुझाव रखा था कि इस समय इस अनुच्छेद में विभिन्न लेखों का जो विशेष उल्लेख है वह नहीं होना चाहिये और यह विषय पूर्णतः सर्वोच्च न्यायालय पर छोड़ देना चाहिये कि वह ऐसे लेख निकाले जो कि वह उस मामले की स्थिति के अनुसार उचित समझे। मैं नहीं समझता कि श्री कामत ने इस अनुच्छेद को ठीक प्रकार पढ़ा है। यदि वे अनुच्छेद को ध्यान से पढ़ते तो वे देख लेते कि इस अनुच्छेद में ऐसा किया गया है कि व्यापक शक्ति भी दे दी गई है तथा विशेष उपचार भी सुझाये गये हैं। अनुच्छेद की भाषा अत्यन्त स्पष्ट है:

> "इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों की पूर्ति कराने के लिये सर्वोच्च न्यायालय को समुचित कार्यवाहियों द्वारा प्रेरित करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।

सर्वोच्च न्यायालय को...लेख के प्रकार के निदेश अथवा आदेश...निकालने की शक्ति होगी..."

यह सर्वथा व्यापक और सामान्य भाषा है।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं एक बात का स्पष्टीकरण चाहता हूं, श्रीमान् मेरे मित्र मि. बेग के स्वीकृत संशोधन के पश्चात् खण्ड इस प्रकार हो जायेगा:

"सर्वोच्च न्यायालय को...निदेश अथवा आदेश अथवा लेख, जिनमें वन्द्युपस्थापन. ..लेख के प्रकार के लेख भी सम्मिलित हैं...निकालने की शक्ति होगी।"

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां, निदेश तथा आदेश शब्द भी इसमें है।

***श्री एच.वी. कामत:** और "लेख"?

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** हां। सर्वोच्च न्यायालय को निदेश तथा आदेश देने के अधिकार तो हैं ही, विधान के मसौदे में इन विशेष लेखों की भी चर्चा करना वांछनीय समझा गया है। इन विशेष लेखों की चर्चा और उल्लेख करने की आवश्यकता भी सर्वथा स्पष्ट है। यह लेख कई वर्षों से ग्रेट ब्रिटेन में लागू हैं। उनकी विशेषतायें और उनसे जो लाभ हैं उन्हें प्रत्येक वकील जानता है, अत: हमने सोचा कि अत्यन्त कल्पनाशील लोगों के लिये भी कोई नई चीज़ का आविष्कार करना असम्भव है, इन लेखों में सुधार करना भी बहुत ही कम है; इन लेखों का अस्तित्व कदाचित् हज़ारों वर्षों से है, और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के विषय में प्रत्येक अंग्रेज़ को इनसे पूर्ण सन्तोष है। अतएव हमने सोचा था कि इन लेखों का, हमारे विधान में उनके नाम से उल्लेख होना चाहिये, जो कि अंग्रेज़ी कानून-व्यवस्था में है, और यदि मैं ऐसा कह सकता हूं तो, उनके सामने धोखे अथवा चालाकी की दाल नहीं गल सकी है, पर इससे सर्वोच्च न्यायालय के इस अधिकार पर प्रभाव नहीं पड़ेगा कि वह यदि वांछनीय समझे तो अन्य प्रकार से भी न्याय कर सकता है। इसलिये मैं कहता हूं कि श्री कामत को उस विषय पर शिकायत करने का कोई आधार नहीं होना चाहिये।

मेरे मित्र श्री सरवटे ने कहा था कि इस अनुच्छेद के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय को मामले के तथ्यों की जांच करने की भी

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

स्वतन्त्रता होनी चाहिये। मुझे इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि श्री सरवटे ने इन लेखों की विशेषताओं तथा क्षेत्र को गलत समझा है। जिसे अंग्रेज़ी कानून का ज़रा भी ज्ञान है वह इस बात को समझ जायेगा तथा मान लेगा कि इस अनुच्छेद में उल्लिखित लेख दो श्रेणी के हैं। एक तो विशिष्ट अधिकार के लेख (prerogative writs) होते हैं और दूसरे दावे वाले लेख (writs in action) होते हैं। परमादेश का लेख, प्रतिबन्ध का लेख, उत्प्रेषण लेख दोनों प्रकार से काम में आ सकते हैं अथवा मांगे जा सकते हैं; वे विशिष्ट अधिकार के लेख के रूप में प्रयोग किये जा सकते हैं तथा किसी मुकद्दमें के दौरान में मुकद्दमें वाला उनके लिये आवेदन-पत्र दे सकता है। इस अनुच्छेद में जिन लेखों की चर्चा है उनका महत्त्व यह है कि वे विशिष्ट अधिकारों के लेख हैं; कोई उत्पीड़ित बिना मुकद्दमा अथवा दावा दायर किये ही इन लेखों के लिये प्रार्थना कर सकता है। साधारणत: आपको दावा करना पड़ता है तभी आपको न्यायालय से किसी प्रकार की आज्ञा मिल सकती है चाहे वह परमादेश, प्रतिबन्ध, उत्प्रेषण अथवा किसी अन्य प्रकार का लेख हो। किन्तु जहां तक इस अनुच्छेद का प्रश्न है, आपको कोई दावा करने की आवश्यकता नहीं है, वरन् आप सीधे न्यायालय जाकर लेख के लिये आवेदन-पत्र दे सकते है। वास्तव में लेख का उद्देश्य अन्तरिम सहायता देना है। उदाहरणार्थ, यदि कोई मनुष्य पकड़ा जाये, तो पकड़ने वाले अधिकारी के विरुद्ध कोई दावा अथवा कार्यवाही किये बिना ही, वह न्यायालय में प्रार्थना-पत्र दे सकता है कि उसे स्वतन्त्र किया जाये। पर उसके लिये उस अधिकारी के विरुद्ध दावा अथवा कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसी कार्यवाही में जब कि विशिष्ट अधिकार के लेख के लिये ही आवेदन-पत्र दिया जाये, तो न्यायालय केवल इतना ही कर सकता है कि वह यह पता लगाये कि गिरफ्तारी कानून के अनुसार हुई है अथवा नहीं। उस समय न्यायालय इस प्रश्न पर विचार नहीं करेगा कि वह कानून, जिसके अधीन वह मनुष्य बन्दी बनाया गया है, अच्छा है अथवा बुरा, आया वह विधान के किसी प्रावधान के विपरीत जाता है अथवा नहीं। वन्द्युपस्थापन की कार्यवाही में न्यायालय केवल इतना ही मालूम कर सकता है कि आया वह गिरफ्तारी वैद्य है, और उस समय कानून के गुणावगुण पर विचार नहीं करेगा—कम से कम न्यायालय की प्रणाली तो यही है। जब एक मनुष्य वास्तव में गिरफ्तार किया जाये तथा उसका मुकद्दमा आरम्भ हो जाये, तब उस

कार्यवाही के मध्य न्यायालय को तथ्य-सम्बन्धी खोज करने का अधिकार होगा और यह भी निश्चित करने का अधिकार होगा कि जिस कानून-विशेष के अधीन उस व्यक्ति को बन्दी बनाया गया है वह कानून ठीक है अथवा नहीं है। तब न्यायालय इस प्रश्न पर विचार करेगा कि यह विधान के प्रावधानों के विपरीत तो नहीं है। अतः मेरे मित्र श्री वी. एस. सरवटे ने जो संशोधन रखा था, यदि मैं ऐसा कह सकता हूं, तो वह यहां सर्वथा असंगत है। ऐसा प्रावधान यहां नहीं रखा जा सकता। यदि वे अनुच्छेद 115 को पढ़ेंगे तो वे देखेंगे कि ऐसे लेखों के लिये वहां प्रावधान रखा गया है। पर वे ऐसे लेख हैं जो कि तथ्य तथा कानून के प्रश्नों के सम्बन्ध में निकाले जा सकते हैं। निस्संदेह न्यायालय उनके विषय में जांच कर सकते हैं।

श्रीमान्, मुझे हर्ष है कि इस अनुच्छेद पर जितने लोग बोले हैं उनमें से अधिकांश ने इस अनुच्छेद के महत्त्व तथा मूल्य को समझा है। यदि मुझे ऐसे एक अनुच्छेद का नाम लेने के लिये कहा जाय, जो कि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसके बिना समस्त विधान प्रभावहीन है, तो मैं इस अनुच्छेद के अतिरिक्त और किसी का नाम नहीं ले सकता। यह विधान की आत्मा है, हृदय है और मुझे प्रसन्नता है कि परिषद् ने इसकी महत्ता को समझा है।

किन्तु एक बात मैं देखता हूं कि इस अनुच्छेद पर बोलने वाले सदस्यों ने इसे पर्याप्त रूप में नहीं समझा है। मैं अपना स्थान लेने से पहले इसी की चर्चा करूंगा। इस अनुच्छेद में जिन लेखों का उल्लेख है वे एक प्रकार से नये नहीं हैं। वन्द्युपस्थापन हमारी आपराधिक प्रणाली संहिता में है। परमादेश हमारे विशिष्ट उपचार (स्पेसेफिक रिलीफ) के कानून में है और यहां उल्लिखित कई अन्य लेखों का भी हमारे विभिन्न कानूनों में उल्लेख है। किन्तु इन लेखों के सम्बन्ध में वर्तमान स्थिति में और इस विधान के पारित होने के पश्चात् उत्पन्न होने वाली स्थिति में यह अन्तर है कि हमारे विभिन्न कानूनों में उल्लिखित सारे लेख विधान-मण्डल की कृपा पर अवलम्बित हैं। हमारी आपराधिक प्रणाली संहिता जिसमें कि वन्द्युपस्थापन के विषय में एक प्रावधान है जिसे कि विद्यमान विधान-मण्डल बदल सकता है। विशिष्ट-उपचार कानून भी संशोधित हो सकता है और जिस विधान-मण्डल में कोई बहुमत हो और वह बहुमत एक ही विचार का हो तो वन्द्युपस्थापन तथा परमादेश के लेख भी बिना किसी कठिनाई के छीने जा सकते हैं। आगे से किसी विधान-मण्डल के लिये यह सम्भव नहीं होगा कि वह इस अनुच्छेद में वर्णित लेखों को मिटा सके। ऐसा नहीं है कि विधान-मण्डल

[माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

पर छोड़ दिया गया हो कि वह अपनी इच्छा से कानून बना कर सर्वोच्च न्यायालय को इन लेखों के निकालने की शक्ति प्रदान करे। विधान द्वारा ही यह अधिकार सर्वोच्च न्यायालय में निहित कर दिये गये हैं और इन अधिकारों को तब तक छीना नहीं जा सकता जब तक कि विधान को ही संशोधित न किया जाये, जिसके लिये कि विधान-मण्डल को साधन दिये गये हैं। मेरे विचार में यह एक अत्यन्त महान् अभिरक्षण है जो कि व्यक्ति की सुरक्षा और रक्षा के लिये रखा जा सकता है। अतएव हमें ऐसी अधिक आशंका नहीं होनी चाहिये कि इस विधान में प्रावहित स्वतंत्रताओं को कोई भी विधान-मण्डल, जिसमें कि बहुमत दल विद्यमान हो, छीन सकता है।

श्रीमान्, मैं एक बात और कहना चाहता हूं। इस परिषद् में निदेशक सिद्धांतों और मूलाधिकारों पर जो वाद-विवाद हुआ है उसमें मैंने उन सदस्यों की वक्तृताओं को सुना है जिन्होंने कि इस बात की शिकायत की है हमने किसी अधिकार विशेष अथवा नीति विशेष को अपने मूलाधिकारों में अथवा अपने निदेशक सिद्धान्तों में नहीं रखा है। रूस के विधान तथा अन्य देशों के विधानों का प्रसंग रखा गया है जिनमें कि ऐसी घोषणाओं का समावेश है जो कि सदस्यों ने अपने संशोधनों द्वारा हमारे विधान में रखने का प्रयत्न किया है। श्रीमान्, मेरे विचार में उनमें से किसी संशोधन के पेश करने वाले किसी सदस्य को मेरी इस बात से बुरा नहीं मानना चाहिये कि मैं अधिकारों के विषय में ब्रिटिश प्रणाली को अधिक अच्छा समझता हूं। ब्रिटिश प्रणाली एक विशेष प्रणाली है। वह अत्यन्त वास्तविक तथा अत्यन्त समुचित प्रणाली है। ब्रिटिश न्याय-व्यवस्था में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि ऐसा अधिकार व्यर्थ है जिसके लिये विधान में उपचार न हो। वास्तव में उपचार से ही अधिकार का अस्तित्व होता है। यदि कोई उपचार न हो तो अधिकार का भी अस्तित्व नहीं होता, और इसीलिये मैं विधान में ऐसी अनेक सुन्दर घोषणाओं को भरना नहीं चाहता जो कि व्यापक और सुन्दर हों, पर जिनके लिये विधान में कोई उपचार न हो। इससे तो यह अधिक अच्छा है कि अपने अधिकारों के क्षेत्र को हम सीमित ही रखें और उनके लिये उपचार रखकर हम उन्हें वास्तविक बना दें, इसके बजाय कि हम विधान में सुन्दर इच्छाओं का समावेश करें। मुझे बहुत प्रसन्नता है कि इस परिषद् ने इस बात को समझा है कि हमने जो उपचार रखे हैं वे इस विधान का मूल भाग हैं। श्रीमान्, इन शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** मैं एक बात स्पष्ट करवाना चाहता हूं, श्रीमान्, क्योंकि हम न्याय्य मूलाधिकारों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इनकी प्रत्याभूति देने के विषय में वाद-विवाद कर रहे हैं, और अनुच्छेद 280 की भी चर्चा आ गई है, अत: क्या ऐसा कहना ठीक नहीं होगा कि "इस अनुच्छेद में प्रत्याभूत अधिकारों को पूर्णत: अथवा अंशत: निलम्बित नहीं किया जायेगा..." अथवा कुछ ऐसे शब्द रखे जा सकते हैं जो कानूनी विशेषज्ञ पसंद करें।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर:** 'निलम्बित नहीं किये जायेंगे' इसमें दोनों आ गये। इसका विशेष उल्लेख करना अनावश्यक है।

***उपाध्यक्ष:** अब मैं संशोधनों पर एक-एक करके मत लूंगा।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (1) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड रख दिया जाये, अर्थात्–

'(1) प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह उचित कार्यवाही द्वारा इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को क्रियान्वित कराये।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (1) में 'सर्वोच्च न्यायालय' इन शब्दों के स्थान पर 'सर्वोच्च न्यायालय अथवा अन्य न्यायालय जिसे खण्ड (3) के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों का प्रयोग करने का अधिकार दिया गया हो' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 787 जो कि श्री कामत के नाम से है।

***श्री एच.वी. कामत:** इस विषय में डॉक्टर अम्बेडकर ने जो कुछ बातें कही हैं, उनको ध्यान में रखते हुये, मैं इस पर ज़ोर नहीं देना चाहता।

(संशोधन परिषद् की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्ष:** तत्पश्चात् हम संशोधन संख्या 789 पर आते हैं जो कि मि. महबूबअली बेग के नाम में था पर उसे मि. नज़ीरुद्दीन अहमद ने पेश किया था। प्रश्न यह है:

[उपाध्यक्ष]

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (2) में अंग्रेज़ी के 'in the nature of the writs of' इन शब्दों के स्थान पर 'or writs, including writs in the nature of' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 794 जो डॉक्टर अम्बेडकर, श्री माधव राव तथा मि. सादूल्ला के नामों से हैं।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के वर्तमान उपखण्ड (3) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिया जाये:

'इस अनुच्छेद के खण्ड (1) तथा (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के, संसद्, विधि द्वारा किसी दूसरे न्यायालय को उसके अधिकार-क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर, इस अनुच्छेद के खण्ड (2) के अधीन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य सब अथवा किसी शक्ति का प्रयोग करने की शक्ति दे सकेगी।'"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्षः** सूची एक का संशोधन संख्या 43, जो श्री सरवटे के नाम से है।

***श्री वी.एस. सरवटेः** मैं इस पर बल देना नहीं चाहता।

(संशोधन परिषद् की अनुमति से वापस ले लिया गया।)

***उपाध्यक्षः** सूची एक का संशोधन संख्या 44 ।

प्रश्न यह है:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 794 में, अनुच्छेद 25 के प्रस्तावित खण्ड (3) में से 'इस अनुच्छेद के खण्ड के (2) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों पर बिना किसी विपरीत प्रभाव के' ये शब्द निकाल दिये जायें।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 801 ।

प्रश्न यह है :

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) को हटा दिया जाये।"

*संशोधन अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 802, जो मि. करीमुद्दीन के नाम से है।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में 'इस संविधान में अन्यथा प्रावहित अवस्था' इन शब्दों के स्थान पर 'विद्रोह अथवा आक्रमण की अवस्था तथा जब इस संविधान के भाग 9 के अधीन सद्यस्कृत्यस्थिति घोषित की जाये उस अवस्था' ये शब्द रख दिये जायें।"

*प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।*

**उपाध्यक्षः** मि. नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 805 ।

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 25 के खण्ड (4) में 'प्रत्याभूत' शब्द के स्थान पर 'प्रदत्त' शब्द रख दिया जाये।"

*प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।*

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधन संख्या 789 तथा 794 द्वारा संशोधित रूप में अनुच्छेद 25 पर मत लूंगा। प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 25 विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 25 विधान में जोड़ दिया गया।*

---

## अनुच्छेद 25-ए

***उपाध्यक्षः** अब हम अनुच्छेद 25-ए पर आते हैं। मि. लारी का संशोधन संख्या 808 ।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

---

## अनुच्छेद 26

***उपाध्यक्षः** इसके बाद हम अनुच्छेद 26 पर आते हैं। परिषद् के समक्ष प्रस्ताव यह है:

"कि अनुच्छेद 26 विधान का भाग हो।"

संशोधन संख्या 809 नकारात्मक आशय का है, अतः इसके पेश करने की अनुमति नहीं दी जाती।

[उपाध्यक्ष]

(संशोधन संख्या 810 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 811 और 812 एक से आशय के हैं। मुझे कहना चाहिये कि वे लगभग एक ही हैं। मैं संशोधन संख्या 811 के पेश करने की अनुमति देता हूं।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 26 में 'में प्रत्याभूत' इन शब्दों के स्थान पर 'द्वारा प्रदत्त' ये शब्द रख दिये जायें।"

इस भाग द्वारा यह अधिकार प्रदान ही किये गये हैं, प्रत्याभूत नहीं होते। अतएव भाषा में एकरूपता लाने के लिये, मैं इस संशोधन का सुझाव रखता हूं।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है जो प्रथम सूची में संख्या 48 है।

(संशोधन पेश नहीं किया गया।)

(संशोधन संख्या 813 पेश नहीं हुआ।)

अब मैं अनुच्छेद 26 पर मत लूंगा।

***श्री टी. टी. कृष्णमाचारीः** संशोधन पर मत लेने से पहले अनुच्छेद पर मत कैसे लिया जा सकता है?

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 26 में 'में प्रत्याभूत' इन शब्दों के स्थान पर 'द्वारा प्रदत्त' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्षः** प्रश्न यह है:

"कि संशोधित रूप में अनुच्छेद 26 विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*संशोधित रूप में अनुच्छेद 26 विधान में जोड़ दिया गया।*

---

## अनुच्छेद 27

*(संशोधन संख्या 814, 815 और 816 पेश नहीं किये गये।)*

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 817 और 818 पर एक साथ विचार होगा। 817 पेश होगा, यह डॉ. अम्बेडकर के नाम में है।

**माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 27 के खण्ड (क) के स्थान पर निम्न खण्ड रख दिया जाये:

'(a) with respect to any of the matters which, under clause (2a) of article 10, article 16, clause (3) of article 25 and article 26 may be provided for by legislation by Parliament, and,' "

[(क) किसी ऐसे विषयों के लिये, जिनका, अनुच्छेद 10 के खण्ड (2क), अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 25 के खण्ड (3) तथा अनुच्छेद 26 के अधीन, संसद् विधान द्वारा प्रावधान करे, और]

अनुच्छेद 10 के खण्ड (2क) को जोड़ देने की चर्चा करने का यह कारण है कि वह नया खण्ड है जो इस परिषद् में स्वीकृत हुआ था। अतः इस अनुच्छेद में उसका जिक्र करना अपेक्षित है।

***उपाध्यक्षः** इस संशोधन पर एक संशोधन है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैंने इसे संशोधित रूप में ही पेश किया है।

***उपाध्यक्षः** अच्छा।

(संशोधन संख्या 818 पेश नहीं किया गया।)

संशोधन संख्या 819 शाब्दिक संशोधन है। संशोधन संख्या 820 पेश हो सकता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि 'ऐसे विषयों के प्रावधानार्थ तथा ऐसे कार्यों के लिये दण्ड विनिधानार्थ' इन शब्दों के स्थान पर 'इस अनुच्छेद के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट कार्यों के लिये दण्ड विनिधानार्थ' ये शब्द रख दिये जायें।"

***उपाध्यक्षः** सूची 1 का संशोधन संख्या 48 जो मि. नज़ीरुद्दीन अहमद के नाम में है। क्या वे इसे पेश करना चाहते हैं?

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान्, मैं सविनय प्रस्ताव करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 820 और 822 में अनुच्छेद 27 और उसके परादिक में, जहां भी 'इस अनुच्छेद में' (in this

[श्री नजीरुद्दीन अहमद]

article) ये शब्द हों, उन्हें तथा व्याख्या में 'इस संविधान का' (of this Constitution) ये शब्द हटा दिये जायें।"

***उपाध्यक्षः** यह भी शाब्दिक संशोधन जैसा ही है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** हां, श्रीमान्, क्योंकि मेरा नाम पुकारा गया था, अतः मुझे सभापति की आज्ञा का पालन करना था और इसी कारण मैं इसे पेश करने के लिये ध्वनि-यंत्र पर आया हूं, किन्तु यह संशोधन शाब्दिक ही है।

***उपाध्यक्षः** मैं बहुत कृतज्ञ हूं। मैं इसका यह अर्थ लगाता हूं कि आप इसे पेश नहीं कर रहे हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** नहीं, श्रीमान्, मैं इसे पेश तो कर चुका ही हूं, किन्तु मैं इस पर ज़ोर देना नहीं चाहता।

***उपाध्यक्षः** संशोधन संख्या 822 और 823 सदृश आशय के हैं। संख्या 822 पेश किया जा सकता है।

***माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकरः** श्रीमान्, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि अनुच्छेद 27 के परादिक तथा व्याख्या के स्थान पर निम्न शब्द रख दिये जायें:

'Provided that any law in force immediately before the commencement of this Constitution in the territory of India or any part thereof with respect to any of the matters referred to in clause (a) of this article or providing for punishment for any act referred to in clause (b) of this article shall, subject to the terms thereof, continue in force therein, until altered or repealed or amended by Parliament.

*Explanation.*—In this article the expression 'law in force' has the same meaning as in article 307 of this Constitution.'

[पर इस अनुच्छेद के खण्ड (क) में निर्दिष्ट किसी विषय-सम्बन्धी अथवा इस अनुच्छेद के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी कार्य के लिये दण्ड-विनिधानकारी, भारत के राज्यक्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग

में इस संविधान के आरम्भ होने के सद्यपूर्व प्रवृत्त, कोई विधि, उसकी शर्तों के अधीन रहते हुये, तब तक प्रभावी रहेगी जब तक कि संसद् द्वारा वह परिवर्तित अथवा विखण्डित अथवा संशोधित न की जाये।

*व्याख्या*–इस अनुच्छेद में 'प्रवृत्त विधि' इन शब्दों का वही अर्थ है जो कि इस संविधान के अनुच्छेद 307 में है।]"

(सूची एक का संशोधन संख्या 50, सूची संख्या चार का 65 तथा 823 पेश नहीं किये गये।)

***उपाध्यक्षः** अब इस अनुच्छेद पर व्यापक वाद-विवाद हो सकता है।

(इस समय श्री कामत बोलने खड़े हुये।)

***उपाध्यक्षः** मुझे आशा है कि आज की बैठक समाप्त होने के पहले आप मुझे काम पूरा निपटा लेने देंगे। इस हालत में मैं परिषद् को एक बजे से स्थगित कर सकूंगा।

***श्री एच.वी. कामतः** मैं भी आपके समान ही आतुर हूं उपाध्यक्ष महोदय, मैं तो डॉक्टर अम्बेडकर से, उनके संशोधन संख्या 820 के विषय में, कुछ थोड़ा-सा प्रकाश प्राप्त करने के लिये ही उठा हूं। मैं यह स्पष्टतया समझने में असमर्थ हूं कि इस समय अनुच्छेद में जो शब्द हैं उनके स्थान पर वे प्रस्तावित शब्द क्यों रखना चाहते हैं। यदि उनका संशोधन स्वीकार कर लिया जाये तो इसका यह अर्थ होगा कि संसद् को केवल खण्ड (ख) में उल्लिखित कार्यों के लिये दण्ड का विनिधान करने की शक्ति होगी। तो फिर, खण्ड (क) में कानून द्वारा प्रावहित शक्तियों के विषय में संसद् को कानून बनाने की क्या शक्ति होगी? क्या उनके संशोधन का अभिप्राय यह है कि इस अनुच्छेद के खण्ड (क) द्वारा प्रदत्त शक्तियों को छीन लिया जाये? यह कल्पना की जा सकती है कि कुछ ऐसे मामले भी हैं जिनके विषय में इस समय कोई कानून नहीं है। अतः यदि कोई मामले हों, जिनके विषय में कोई कानून प्रवृत्त नहीं हो, तो क्या वे अपने संशोधन द्वारा इस अनुच्छेद के खण्ड (क) द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनना चाहते हैं, जिसमें लिखा है कि "किसी ऐसे विषय के लिये जिसका इस भाग के अनुसार संसद् के लिये विधान द्वारा प्रावधान करना आवश्यक है?" संशोधन में केवल दण्ड के विनिधान के लिये ही शक्ति दी गई है और ऐसे विषयों के लिये कानून बनाने की शक्ति नहीं दी गई है जिनका इस भाग के अनुसार कानून द्वारा प्रावधान करना

[श्री एच.वी. कामत]

आवश्यक है। मैं जानना चाहता हूं कि इस संशोधन का ठीक आशय क्या है और खण्ड (क) में इस प्रकार संशोधन क्यों किया जा रहा है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मुझे खेद है कि श्री कामत अनुच्छेद 27 में निहित योजना को नहीं समझ पाये हैं। इस अनुच्छेद में तीन सिद्धान्त हैं। प्रथम सिद्धान्त यह है कि जहां भी संविधान में निर्दिष्ट हो कि मूलाधिकार को क्रियान्वित करने के लिये कानून बनाया जायेगा, अथवा जहां किसी ऐसे कार्य को दण्डनीय बनाने के लिये कानून बनाना हो जिससे कि मूलाधिकार में हस्तक्षेप होता हो, तो वह अधिकार केवल संसद् को ही होगा, चाहे विषय-वितरण सम्बन्धी सूची के अनुसार ऐसा कानून राज्य के विधान-मण्डल के क्षेत्राधिकार में ही क्यों न हो। इसका उद्देश्य यह है कि मूलाधिकार तथा उनके उल्लंघन पर नियत दण्ड भारत-भर में एकरूप हों। यदि यह उद्देश्य पूरा करना है कि मूलाधिकार एकरूप होंगे तथा उनके उल्लंघन के लिये दण्ड भी एकरूप होंगे तो वह शक्ति संसद द्वारा ही प्रयुक्त होनी चाहिये, जिससे कि एकरूपता आ जाये।

दूसरी बात यह है। यदि इस समय ऐसे कानून हैं जो मूलाधिकारों के उल्लंघन के विषय में दण्ड की व्यवस्था करते हैं, तो जब तक संसद् दूसरा अथवा अधिक अच्छा और प्रावधान न कर दे तब तक वे ही कानून लागू रहेंगे। यह सारी योजना है। मैं नहीं समझता कि अनुच्छेद 27 के प्रावधानों को समझने में कोई कठिनाई क्यों होनी चाहिये।

***श्री एच.वी. कामतः** मुझे खेद है, श्रीमान्, कि डॉक्टर अम्बेडकर मेरी बात को स्पष्टतः समझ नहीं सके हैं। (*हंसी*)

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** यह सर्वथा सम्भव है।

***उपाध्यक्षः** श्री कामत, ऐसा भी हो सकता है कि आप ही न समझे हों।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, मैंने जो प्रश्न उठाया था, उन्होंने उसके स्थान पर दूसरे का उत्तर दे दिया है। मेरा प्रश्न दूसरा था। कदाचित् वे मेरी बात को ध्यान से नहीं सुन रहे थे। वे किसी और से बातचीत कर रहे थे। यदि आप मुझे अनुमति दें, तो श्रीमान्, मैं अपनी बात समझाने का प्रयत्न करूंगा।

***उपाध्यक्षः** किन्तु परिषद् को सम्बोधन मत कीजिये, आपको सभापति को सम्बोधन करना चाहिये।

**श्री एच.वी. कामतः** मैं आपको ही सम्बोधित कर रहा हूं, श्रीमान्, जैसा कि मैं सदा करता हूं। जो कठिनाई उत्पन्न हो रही है वह यह है। अनुच्छेद की वर्तमान भाषा के अनुसार, खण्ड (क) से केवल संसद् को ही शक्ति दी जाती है। मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है; मैं मानता हूं कि संसद् को और एकमात्र संसद् को ही अधिकार होना चाहिये। आप यहां कहते हैं कि किसी विषय के सम्बन्ध में संसद् को कानून बनाने का अधिकार होगा। बाद में आप कहते हैं कि इस संविधान के आरम्भ होने पर यथासम्भव शीघ्र ही संसद् अमुक-अमुक विषय पर कानून बनायेगी। अब, इस बाद के भाग के स्थान पर संशोधन संख्या 820 रखना चाहते हैं। आप 'ऐसे विषयों के प्रावधानार्थ' इन शब्दों को हटाना चाहते हैं और केवल दण्ड सम्बन्धी प्रावधान रखना चाहते हैं। ऐसे विषयों के विषय में कानून बनाने के बारे में क्या होगा? आप उस भाग को क्यों हटाना चाहते हैं? आप केवल दण्ड-विषयक भाग को ही क्यों रखना चाहते हैं? मैंने तो यह बात कही थी, किन्तु डा. अम्बेडकर ने एक दूसरी बात का उत्तर दे दिया।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** मैंने खण्ड (क) में जो संशोधन रखा है, उसका कारण यह है कि केवल कुछ विशिष्ट मामलों में संसद् को दण्ड-अधिकार दिया गया है और इन अनुच्छेदों का मेरे संशोधन में उल्लेख है। मेरे मित्र श्री कामत देखेंगे कि खण्ड (क) में किसी ऐसे अनुच्छेदों का उल्लेख नहीं है जो संसद् को स्पष्टरूपेण कानून बनाने का अधिकार देते हों। इस बात को स्पष्ट करने के लिये ही मैंने यह वांछनीय समझा कि अनुच्छेद 10 के खण्ड (2क), अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 25 के खण्ड (3) तथा अनुच्छेद 26 की चर्चा कर दी जाये, यह विशिष्ट अनुच्छेद हैं जिनके विषय में केवल संसद् को ही अधिकार है।

***उपाध्यक्षः** अब मैं संशोधनों पर मत लूंगा। वे सब डॉक्टर अम्बेडकर के नाम पर ही हैं।

संशोधन संख्या 817, जिस रूप में कि वह सूची 3 के संशोधन संख्या 56 द्वारा संशोधित हुआ है।

[उपाध्यक्ष]

प्रश्न यह है:

"कि अनुच्छेद 27 के खंड (क) के स्थान पर निम्न खंड रख दिया जाये:

'(क) किसी ऐसे विषयों के लिये जिनका, अनुच्छेद 10 के खंड (2क) अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 25 के खंड 3 तथा अनुच्छेद 26 के अधीन, संसद् विधान द्वारा प्रावधान करे, और' "

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 820 ।

प्रश्न यह है:

"कि 'ऐसे विषयों के प्रावधानार्थ तथा ऐसे कार्यों के लिये ढ़ंड विनिधानार्थ' इन शब्दों के स्थान पर 'इस अनुच्छेद के खंड (ख) में निर्दिष्ट कार्यों के लिये दंड-विनिधानार्थ' ये शब्द रख दिये जायें।"

*संशोधन स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्ष:** संशोधन संख्या 822 ।

प्रश्न यह है :

"कि अनुच्छेद 27 के परादिक तथा व्याख्या के स्थान पर, निम्न शब्द रख दिये जायें:

'पर इस अनुच्छेद के खण्ड (क) मे निर्दिष्ट किसी विषय-सम्बन्धी अथवा इस अनुच्छेद के खण्ड (ख) में निर्दिष्ट किसी कार्य के लिये दण्ड-विनिधानकारी, भारत के राज्यक्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग में इस संविधान के आरम्भ होने से सद्य:पूर्व प्रवृत्त कोई विधि, उसकी शर्तों के अधीन रहते हुये, तब तक प्रभावी रहेगी जब तक कि संसद् द्वारा वह परिवर्तित अथवा विखण्डित अथवा संशोधित न की जाये।

*व्याख्या*–इस अनुच्छेद में 'प्रवृत्त विधि' इन शब्दों का वही अर्थ है जो कि इस संविधान के अनुच्छेद 307 में है।'"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

***उपाध्यक्षः** परिषद् के समक्ष प्रश्न यह है।

"कि अनुच्छेद 27 संशोधित रूप में विधान का भाग हो।"

*प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।*

*अनुच्छेद 27 को संशोधित रूप में विधान में जोड़ दिया गया।*

***उपाध्यक्षः** परिषद् कल सवेरे दस बजे तक के लिये स्थगित होती है।

*तत्पश्चात् परिषद् शुक्रवार, 10 दिसम्बर सन् 1948 ई. के प्रातः दस बजे तक के लिये स्थगित हो गई।*